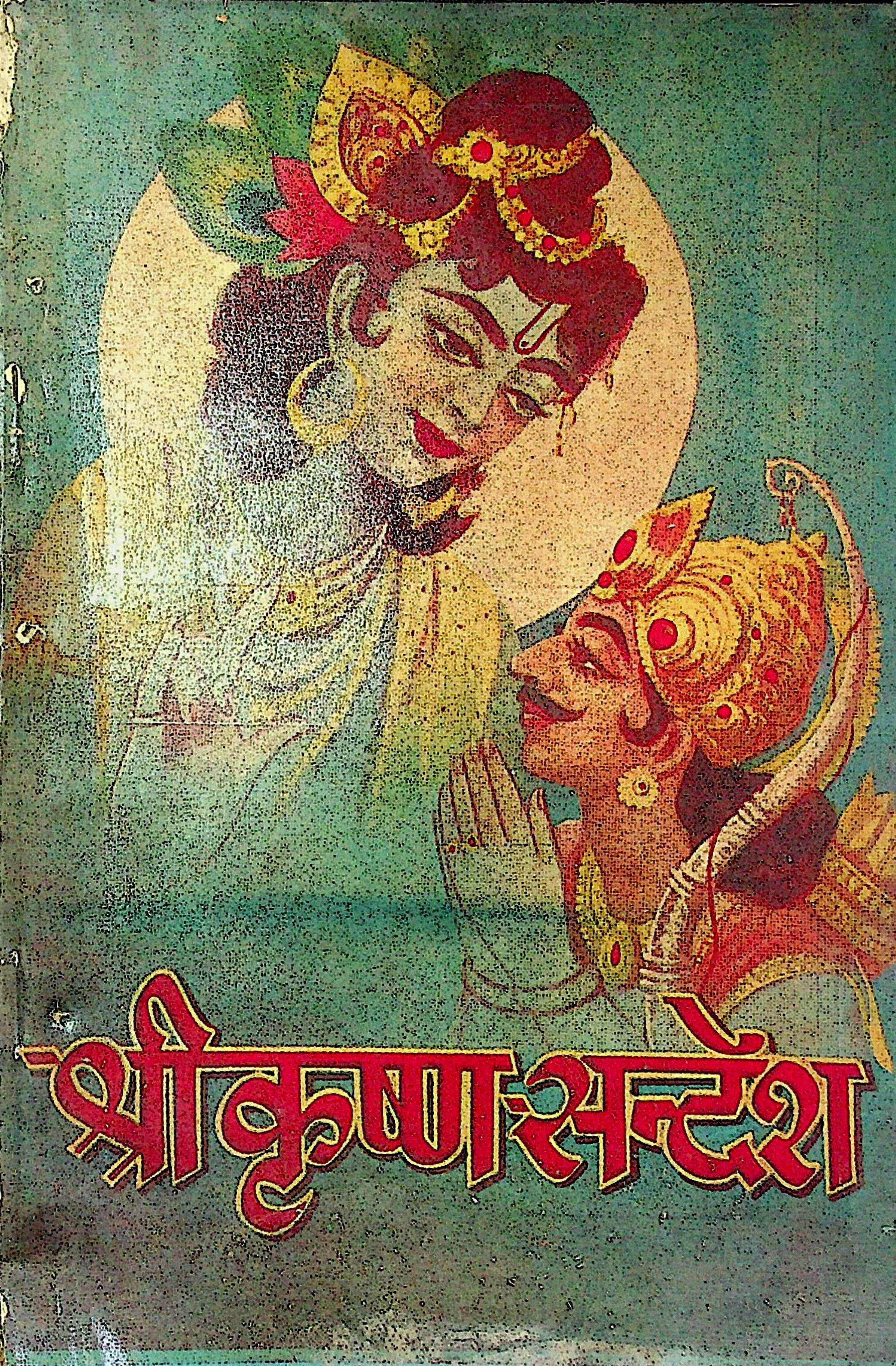
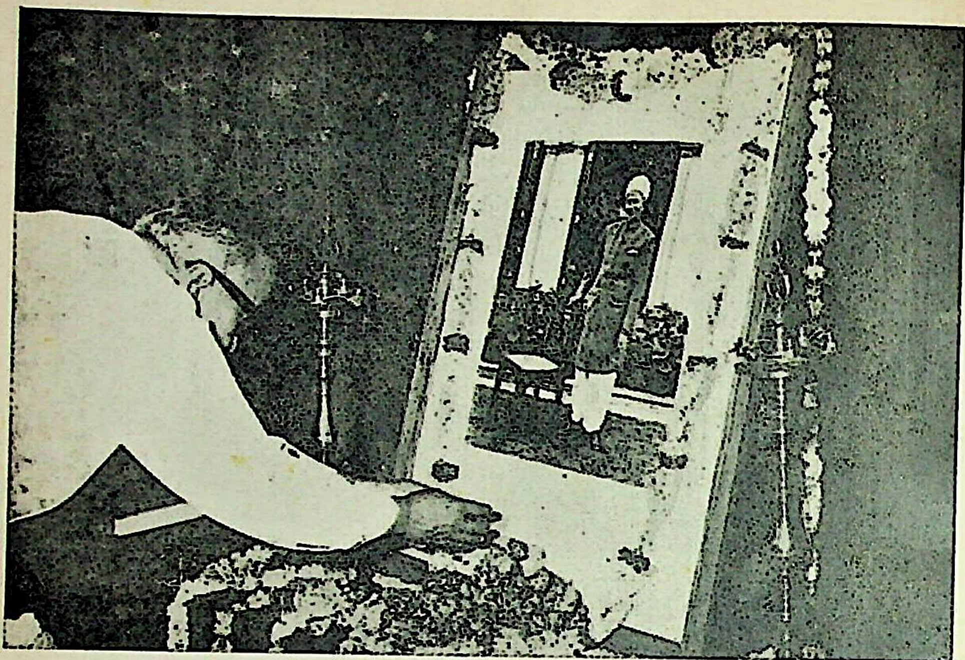

श्रीकृष्ण सन्देश

श्रद्धाञ्जलि - समारोहकी झाँकी—



श्रीकृष्ण-जन्मस्थानके पुनरुद्धारक स्वर्गीय श्रीजुगलकिशोरजी बिरलाकी प्रथम पुण्य-तिथिपर १३ जूनको संघ द्वारा नयी दिल्लीमें आयोजित श्रद्धाञ्जलि - ग्रन्थ - समर्पण - समारोहमें दिल्लीके उपराज्यपाल श्रीआदित्यनाथ झा दिवंगत श्रीबिरलाजीके चित्रके समक्ष पुष्पाञ्जलि अर्पित करते हुये ।

उक्त समारोहमें श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंघ द्वारा प्रकाशित श्रद्धाञ्जलि ग्रन्थ 'एक बिन्दु : एक सिन्धु' की प्रति उपराज्यपाल महोदय श्रीकृष्णकुमारजी बिरलाको समर्पित कर रहे हैं।



श्रीकृष्ण-सन्देश

[धर्म, अध्यात्म एवं संस्कृति-प्रधान मासिक पत्र]

प्रवर्तक

ब्रह्मलीन श्रीजुगलकिशोर बिरला





प्रबन्ध-सम्पादक

श्रीदेवधर शर्मा

सम्पादक

श्रीव्यथितहृदय



प्रकाशक

श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंघ, मथुरा

दूरभाष : ३३८



वार्षिक शुल्क

सात रुपये

आजीवन शुल्क

एकसौ इक्यावन रुपये

वर्ष : ४] अगस्त १९६८ [अंक : १

विषय-सूची

मुद्रक : बम्बई भूषण प्रेस, मथुरा।

श्रीकृष्ण-जन्मस्थान:
लोक-आरतीके दीप

भगवान् श्रीकृष्णके जन्म-स्थानकी निर्माण योजनासे मैं अत्यन्त प्रभावित हुआ। मुझे पूर्ण विश्वास है कि, यह स्थान निर्मित होजानेपर अद्वितीय, गौरवशाली तथा गीता-गायक भगवान् कृष्णका प्रेरणाप्रद स्मारक होगा।

वशिष्ठ भार्गव
जज, सुप्रीम कोर्ट, नई दिल्ली।

यह जानकर कि, श्रीकृष्ण-जन्मभूमि पुन: अपने गौरवको प्राप्त कर रही है, हर्ष हुआ। प्रत्येक हिन्दू नवनिर्मित मन्दिरको देखकर अपनेको धन्य समझेगा।

श्रीमती एस० पी० पांडे (आई० ए० एस०)
चीफ डाइरेक्टर नेशनल सेम्पल सर्वे
सी II ८८, मोतीबाग १-नईदिल्ली।

भगवान् श्रीकृष्णकी जन्मभूमिमें प्रतिस्थापित मनोरम मूर्तिको देखकर हृदयको बहुत ही शांति मिली। श्रीभागवत-भवनके निर्माणका कार्य बहुत ही सराहनीय है। भगवान् इस कार्यको शीघ्रातिशीघ्र पूर्ण करें।

प्रेमचन्द श्रीवास्तव
उपसचिव (उ० प्र० शासन)
लखनऊ।

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी उस जन्मभूमिको देखा, जहाँ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र प्रत्यक्ष दर्शन दे रहे हैं। यहाँ भगवान्‌की महत्ता अकथनीय है।

स्वामी श्री श्री १०८
श्री महन्त गंगादासजी महाराज
छोटा छत्ता मठ, पुरी,
जगन्नाथपुरी (उड़ीसा)।

आज २० जून १६६८ को श्रीकृष्ण जन्मभूमिपर आया। चित्त प्रसन्न हुआ। जिन लोगोंने इसे बनवाया है और जो लोग इसका प्रबन्ध करते हैं, वे वधाईके पात्र हैं। सफाई अच्छी है। शांत वातावरण है। मुझे आशा है कि, यहाँ आकर लोगोंको आध्यात्मिक प्रेरणा मिलती होगी। नया भागवत भवनभी बनाया जारहा है, जो बड़ा भव्य होगा।

के० के० शर्मा
आयुक्त (कमिश्नर)
आगरा मण्डल, उ० प्र०।

प्रभुकी कृपासे ही मुझे श्रीकृष्ण-जन्मस्थानको देखनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। यहाँका निर्माण कार्य एक महान् अनुष्ठान है। भगवान् श्रीकृष्णकी स्मृतिकेलिए, व्रज-मंडलमें जहाँ प्रभुका जन्म हुआ, अनेक लीलायें कीं और आसुर वृत्तियोंका नाश किया, यह एक अपूर्व वस्तु होगी, जो वर्तमान और आगेकी पीढ़ीके लिए शिक्षाप्रद होगी। धार्मिक तथा सांस्कृतिक दृष्टिकोणसे यह स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण सिद्ध होगा। सफलताके लिए शुभकामना है।

शरदवल्लभा (वेटीजी गोस्वामी)
श्रीवल्लभ गीता श्रीकृष्ण भवन
चौखम्भा, वाराणसी।

भगवान् श्रीकृष्णके जन्मस्थानका हिन्दुओं द्वारा पुनर्निर्माणका प्रयास प्रशंसनीय है, यद्यपि विलंबसे कार्य प्रारंभ हुआ।

एम० सी० पाठक
जज हाईकोर्ट आसाम एवं नागालैण्ड
गोहाटी, आसाम।

प्राचीन और पवित्र श्रीकृष्ण-जन्मस्थानको देखकर प्रत्येक व्यक्तिका हृदय आनन्द से गद्गद हो जाता है।

मि० एण्ड मिसेज जे० सी० कालरा
सेक्रेटरी सेन्ट्रल बोर्ड आफ रेवेन्यू
नई दिल्ली।

भगवान् श्रीकृष्णकी जन्मभूमिका दर्शन किया। यह स्थान सत्य और आध्यात्मिक चिन्तनका उद्गम है। जै गुरुदेव।

मिकेल टायन, कारवोल्ड (मैलवोर्न), आस्ट्रेलिया,
ईवारड स्ट्रोम, ओसलो नार्वे
गर्न हेगिन ट्रोफर वेस्ट जर्मनी
जैरी स्टोविन, ससकाट्रन, ससकेचवान कनाडा
यूनाइटैड किंगडम, यू० एस० ए०,
आयरलैण्ड, स्वीडन, आदि ३५ देशों के प्रतिनिधि
सदस्य मण्डल।

आज मुझे श्रीकृष्ण जन्मभूमिके दर्शनका सौभाग्य प्राप्त हुआ। इस खोये हुए ऐतिहासिक तथा पवित्र स्थानकी पुनर्स्थापना करके श्री विरलाजी, और श्रीडालमियाजी ने देशकी बहुत बड़ी सेवा की है। इसका शेष कार्य शीघ्र सम्पन्न होगा—इस शुभ कामना के साथ—

जयलोक ठाकुर, सहायक मंत्री
बिहार खादी ग्रामोद्योग संघ
सर्वोदय ग्राम, मुजफ्फरपुर (बिहार)।

भगवान् श्रीकृष्णकी पवित्र जन्मभूमिमें आकर स्वयं को कृतकृत्य समझता हूँ।

शिवकुमार तिवारी
सहायक प्रादेशिक परिवहन अधिकारी
झांसी, उ० प्र०।

श्रीकृष्ण-सन्देश

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदाऽऽत्मानं सृजाम्यहम् ।।

वर्ष ४ } मथुरा, अगस्त १९६८ { अङ्क १

श्रीकृष्णका प्राकट्यपर्व



तमद्भुतं वालकमम्वुजेक्षणं
चतुर्भुजं शंखगदार्युदायुधम् ।
श्रीवत्सलक्ष्मं गलशोभिकौस्तुभं
पीताम्वरं सान्द्रपयोदसौभगम् ॥

—वसुदेवजीने देखा, उनके सामने एक अद्भुत बालक है। उसके नेत्र कमलके समान कोमल और विशाल हैं। चार सुन्दर हाथोंमें शंख, गदा, चक्र और कमल लिये हुए हैं। वक्षःस्थलपर श्रीवत्सका चिह्न—अत्यन्त सुन्दर सुवर्णमयी रेखा है। गलेमें कौस्तुभमणि झिलमिला रही है। वर्षा कालीन मेघके समान परम सुन्दर श्यामल शरीरपर मनोहर पीताम्वर फहरा रहा है।

महार्हवैदुर्य किरीट कुण्डल
त्विषा परिष्वक्तसहस्रकुन्तलम् ।
उद्दामकाञ्च्यङ्गदकङ्कणाविभि
विरोचमानं वसुदेव ऐक्षत ॥

—वहुमूल्य वैदुर्य मणिके किरीट और कुण्डलकी कान्तिसे सुन्दर-सुन्दर घुँघराले वाल सूर्यंकी किरणोंके समान चमक रहे हैं। कमरमें चमचमाती करधनीकी लड़ियाँ लटक रही हैं। वाहोंमें वाजूवन्द और कलाइयोंमें कंकण शोभायमान हो रहे हैं। इन सब आभूषणोंसे सुशोभित वालकके अंग-अंगसे अनोखी छटा छिटक रही है।

[श्रीमद्भागवत १०।३।९—१०]

श्रीकृष्ण जन्म-कथा व्रजभाषाकी सुष्ठ, मधुर शैलीमें

"परब्रह्म, परमात्माका श्रीकृष्णके रूपमें अवतार धर्म और दीन-दुखियोंके उद्धारका अवतार है। अतः श्रीकृष्ण जन्म-कथा प्राण प्राणमें पुलक और प्रेरणा उत्पन्न करती है।"

श्रीकृष्ण-जन्मकथा

आचार्य वासुदेवकृष्ण चतुर्वेदी एम. ए.

भगवान् कृष्णने मथुरामें देवकी वसुदेवके यहाँ कंस राजाके कारावासमें भाद्रपद कृष्णा अष्टमी बुधवार रोहिणी नक्षत्रमें जन्म ग्रहण कियो यह सुप्रसिद्ध है।

भागवतमें लिख्यो है कि, या पृथ्वीपै अनेक दानव राजानके रूपमें जन्म लै चुके हैं। उनके पाप सों पीड़ित पृथ्वी गौ को रूप धारण करिकें ब्रह्माजीके समीप पहुँची और अपनो कष्ट सुनायो। ब्रह्माजी पृथ्वीकूं तथा रुद्र भगवान्कूं साथमें लैके क्षीर समुद्र गये और पुरुष सूक्त सूं उनकी स्तुति करी। भगवान् उनके कष्टकूं जान गये और कहन लगे कि, तुम पृथ्वी पै जन्म ग्रहण करो, मैं भी मथुरामें जन्म ग्रहण करूंगो। देवतागण लौटकर चले आये। कछु काल बाद देवकी वसुदेवको विवाह मथुरामें बड़ी धूमधामके संग भयो। विवाहके पश्चात् कंस राजा अपनी बहिन देवकीकूं वसुदेवके घर पहुँचायवेकू स्वयं रथ हांकन लगौ। मार्गमें आकाशवाणी भई कि, हे कंस राजा जा बहिन देवकीकूं बड़ो फूलो-फूलो पहुँचायवे जाय रह्यो है, याको आठवों बालक तोकूं मारवे वारो होयगो। कंस राजाने खड्ग सूं देवकीको मस्तक काटने चाह्यो, किन्तु वसुदेवजीने सान्त्वना वचनन सूं एवं प्रतिज्ञासूं कि, याके बालककूं तोय समर्पण करूंगो, देवकीके प्राण की रक्षा करि घर पहुँच गये।

कालान्तरमें देवकीके गर्भसूं एक बालकको जन्म भयो, वाकूं ले कें वे कंसके समीप गये, पर कंस कूं दया आय गई और वाकूं छोड़ दियो।

इतनेमें ही नारदजी कहूँते भ्रमण करते आये और विचार करन लगे कि, यदि कंस राजा पाप नहीं करेगौ, तो भगवान्को अवतार हूँ शीघ्र नहीं होयगो। याते कंसकूं समझायवे चलूं, वे कंस राजाके समीप गये और ८ रेखा गोलाकारमें काढ़िके बोले कि देख—इनमें प्रत्येक रेखा आठवीं है। यासूं तेरो शत्रु विष्णु कभी भी प्रकट हो सके है

और तू भी पूर्व जन्मको कालनेमि नामको दैत्य है, ये जितने भी यादव हैं गोप-गोपी या व्रज में रहै हैं, सब देवता हैं । इनसूं सावधान रहियो । ये कहिकें नारदजी पधार गये । कंस ने देवकीके जितने भी पुत्र जन्म ले चुके हैं, सबकूं बुलवायो और पैर पकड़ि-पकड़ि कें एक पाषाण शिला पै दे मारे, वल्देवजी गर्भ में आये । उनकूं योगमाया रोहिणी जो वसुदेवजी की पत्नी ही, ताके गर्भ में रखआयो । यह रोहिणी उन दिनन में गोकुल में रह्यौ करतीही ।

भगवान् कृष्ण वैधी दीक्षा सूं प्रथम तो वसुदेवके मनमें आये और पुन: देवकीके शरीरमें प्रकाशित भये ।

कसने देवकी वसुदेव कूं कारागारमें पटक दियो हतो । किन्तु वे वसुदेव की दृष्टिसूं देवकीके गर्भमें प्रतीत भये ।

जव घनघोर बादल गरजना कर रहे तथा बिजली कड़क रही हीं तब अर्द्ध रात्रि के समय भगवान् चार भुजाके रूपसूं शंख, चक्र, गदा, पद्म धारण कियें, पीताम्बर धारण कियें एवं वहुमूल्य रत्नकूं धारण कियें प्रकट भये है ।

भगवान्को जन्म अन्य वालकनके जन्मकी भाँति नहीं भयो,अन्यथा वस्त्र-आयुध सहित कैसें जन्म ग्रहण करते । वसुदेवने अद्भुत वालक देख्यो । बालककौ प्रथम अर्थहै,वाल:क: यस्य ब्रह्मा जाको वालक है,अथवा जाके रोम-रोम में क: अर्थात् ब्रह्माण्ड हैं अथवा जाके मुख में क: प्रजापतिहै । अथवा शिव जाको वालक है । भगवान् बोले कि, तुम मोकूं गोकुल ले जाओ और वहाँ सूं यशोदाके भवनमें सूं उनकी शैयापै एक कन्या प्रकटीहै,ताकूं लै आओ,भय मत करो । यह कहिकें भगवान् प्राकृत शिशु बन गये, पर देवकी वसुदेवके बंधन सब कट गये । बड़े-बड़े कपाट भी स्वत: खुल गये, द्वारपाल सब खर्राटे भरने लगे, तब वसुदेवजी एक बाँस के पात्र में कृष्ण भगवान्कूं स्थापित करकें चुपचाप यमुनाके तट पै आय वामें बड़े साहससूं उतरे,उतर तौ गये,किन्तु भाद्रपद मासकी यमुना यमराजकी बहिन होय है,बड़े-बड़े भँवर कूंडे तामें पड़ि रहे हैं, जो मध्य धारमें वसुदेवजी पहुँचे, त्योंही यमुनाजी भगवान् के चरण-स्पर्श को सुख प्राप्त करिवेंकूं बढ़ी और कहाँ तो उनने वसुदेवजीको मार्ग दियो हो और कहाँ वे तो वढ़त चली आईं । ऊपरसे मेघ गरजनापूर्वक रिमझिम रिमझिम बरसन लग्यो सो शेषजीने भगवान् पै छाया करलींनी कि, कहूँ लालाकूं सरदी न लग जाय ।

जो पानी मुख पै पहुँचौ सोई वसुदेवजी "कोई लेउ-कोई लेउ" पुकारन लगे, यमुनाजी की निष्ठाकूं देखिकें कृष्ण भगवान् ने अपने पैरको स्पर्श कराय दियो सोई सब जल वसुदेवजी के घोंटूसूं भी नीचे हैगयो, वसुदेवजी यशोदाकी शैय्या पै भगवान्कूं पौढ़ायकें वहाँ प्रकटी योगमायाकूं ले कें मथुरा में कारागार में आये, आते ही वेड़ी लग गई, कपाट श्रृंखलाभी बन्द होयगये और द्वारपाल जाग गये । घवड़ाय के कंस राजा के समीप गये और बोले महाराज एक बालक प्रकट भयो है, ये सुनिकें कंस घबड़ा गयो तथा वाकूं मारिवे के ताईं

मेरो काल है, मेरो काल है, यह कहिकें भाग्यो चल्यो आयो है, आते ही देवकीकेहाथसूं वा कन्याकूं छींड़िके जो हत्यारी शिलापै फेंकिके मारयो, सो ही वह कन्या आकाश में चली गई और बोली कि, अरे पापी राजा कंस तेरो मारिवे वारौ जहाँ कहूँ पैदा होय गयो है । कंस बड़ौ पछितायो,देवकी वसुदेवकूं छोड़िकें पश्चाताप करने लगो, मोकूं नहीं मालुम ही कि, दैव भी मिथ्या भाषण करै है । पूतना-शकटासुर, वकासुर-तृणावर्त केशी आदि दानव कहन लगे कि, राजा चिन्ता मत करै, हम एक दिन—दो दिन, १० दिन-२० दिन, एक मास के बालकन कूं मारिंगें, सो तेरो शत्रु भी मारयौ जायगो । रातकूं नन्दबाबा कूं स्वप्न भयौ है एक श्याम सुन्दर वालक यशोदा की गोद में खेल रह्यो है—

श्यामसुन्दर विग्रहं कर तले शंखं चक्रं गदा,
पद्मं पीत सुवासम् च तिलकं भाले तु काश्मीरकम्
वक्षे कौस्तुभ शोभितं शिरसि वै भ्राजात्किरीट द्युतिं
तं वाल कमलेक्षणं च सुमुखं स्वप्नेअप्यहंदृष्टवान् ॥

प्रातः सुनन्दा नामक नन्दबाबा की बहिन जागी और यशोमति की शैया पै जगरमगर प्रकाश देखिकें, बालक को जन्म देखिकें बड़ी प्रसन्न हैं, नन्दबाबा कूं जगायवे दौड़ी । बोली अरे नन्दराय पगिया पहिरकें -शीघ्र ही नीचे उतरि करकें आओ । बाबा वड़े प्रसन्न भये और नौलखाहार बहिन के गले में डारि दियो है । सब गोप-गोपिनकूं खबर कराय दीनी है । वे दूध-दही के मटकानकूं भरि-भरिकें लाये हैं और नन्दबाबाके भवनके मध्य एक सरोवर से में डालें हैं । कोई केसर के गोला बनावे है, कोई गायनकी पूजा करे हैं, थापे लगावे है, कोई वंधाई वारे न कूं बैठारे है, सब गोप-गोपी बाबा बधाई है, बाबा बधाई है कहि-कहि के नाचे हैं । बाबा मुँह मागो दान दैकें वड़े प्रसन्न होय हैं । हाथी-घोड़ा-रथ-पालकी सुवर्ण-चाँदी, मोती, मूंगा-हीरा-पन्ना सबकेदान बाबाने किये हैं । गोकुल में ऐसी भीर पड़ गई जो वर्णन नहीं कर सकें ।

नन्द कें आनन्द भये जै कन्हैयालाल की,
हाथी दिये घोड़ा दिये और दीनीं पालकी ॥

की आवाज देवतानके लोकमें पहुँची है । देवता आमन लगे—कुंड में गोपीनने बाबा कूं पकरिके डुबोय दियो, सो बाबा दूध-दही केशर में बड़ो विचित्र लगन लगो है । लाखन गौ-दान बाबाने किये । एक ब्राह्मणके घर में ठौर नहीं रही, तो चूल्हेपै खूंटा गाढ़ दियो, घरवारी बोली कि, महाराज अव भोजन कहाँ बनेगो । ब्राह्मण बोलो, बावरी अब भी भोजन की चिन्ता है । बाबा के प्रति दिन भोजन हो वो करेगें । ये गाय आयी है याको दूध पीमेंगे ।

सूत मागध वन्दीजन गीत गावन लगे हैं । सूत बोलो है—
"बाबा मैं हों सूत, तेरे भयो है पूत ।
जाहि सेवें जोगी अवधूत, भज गये तेरे भूत ।
अब कर कछु करतूत, "

मागध बोल्यो है—बाबा सुन-मरी घरवारी, ताकूं लेंगो सारी, तामें लगी गोटा किनारी, वो है मेरी अति प्यारी, फिर है बड़ी लड़न हारी, तो तू न देयगो तो वो करेगी मेरी और तेरी ख्वारी।

वन्दी आयो है—
श्री व्रजराज ताहं वन्दी, श्रुत्वा जन्म सुतस्यानन्दी,
कल्पतरोरिव भवतोरीति, याकं दीन जनेष्वति प्रातिः।

ब्राह्मण आशीर्वाद दियो है—

जयति जयति पुत्रस्तेसदानन्द मूर्ति,
जगदघ हर कीर्तिः सौरथ सौभाग्य मूर्तिः
सकल रस रसालः प्रेम पीयूष जालो,
व्रज जन कुल पालो नन्द गोपाल बालः॥

देवता जब घुसन लगे तो गोपीगण उन्हें रोकन लगी हैं, परिचय पूंछन लागीं। गणेश ने परिचय दियो ताकी सूंड़ पकरिकें गोपी लेगयीं और दूध-दही के कुण्ड में गेर दियो। गणेशजी बड़े प्रसन्न भये। कार्तिकेय के मूंड़ पै गोपिन ने दीपक प्रज्वलित कर रख दियो है, ब्रह्माकूं देहली पै बैठाय दियो, महादेव बाबा कूं भीतर नहीं जान देंय क्योंकि लाला तोकूं देखि के डरपि जायगो।

महादेवजी हटाये सूं भी न हटे और बोले हैं—

मैं योगी जस गायारी वाला, मैं जोगी जस गाया।
तेरे सुत के दरसन कारण, मैं काशी तजि धाया॥

× × ×

धनि तेरो भाग जशोदा रानी जिन ऐसो सुत जाया,
देहूं अशीस तेरे बालक कों अविचल बाढ़ै काया।

जशोदाजी बोलीं, बाबा तुम जो भीख चाहों सो लेहु, पर लाला के दरसन नहीं कराऊंगी ये डरपि जायगो।

गोपी कहन लगीं कि जशोदा रानी बाबा कूं ईधन दियो, भिक्षा दीनीं कछु नहीं लेय, बड़ौ मुड़चीरा जोगी है।

शिव बोले—

ना मैं लेहौं पाट पटम्बर ना मैं कंचन काया,
मुख देखौं तेरे बालक कौ यह मेरौ गुरु बताया।
कृष्णलाल कों लाई यशोदा कर अञ्चल मुख छाया।
गोद पसारि चरण रज बन्दी अति आनन्द बढ़ाया॥

नन्द बाबाने तिन पर्वतन कूं सुवर्ण कौ सो पर्वत बनायकें दान दियो, यासूं चकवी बड़ी प्रसन्न भई और अपने पति से बोली कि, यदि इतनो दान प्रतिदिन होयगो तो सुमेरु पर्वत क्षीण होयगो। सूर्यको प्रकाश नहीं रहेगो । हमारौ तुम्हारौ सदा संयोग बनौ रहेगौ।

वृषभानु हथिनिपै बैठिक कें सोनों, चाँदी बरसाते भये गोकुल में आये । गोप-गोपी बड़ी प्रसन्न भई। बंधायो जोर सोर सूं बजन लग्यो है—

"नन्द के आनन्द भये जै कन्हैया लाल की"

ध्वनि गोकुल में भर गई।

एक कवि ने नन्द की महिमा गाई है—

पूत सपूत जन्यौ जसुधा इतनी सुनि कें वसुधा सब दौरी ।
देवन कों आनन्द भयो सुनि धावत गावत मंगल गौरी ।
नन्द कछू इतनो जु दियो धन स्वामि कुवेरहु की मति बौरी ।
मोहि देखत ब्रजहि लुटाय दियो न बची बछिया छतिया न पिछौरी ।।

स्वरूप-माधुरी

हरि मुख निरखत नैन भुलाने ।
ये मधुकर रुचि पंकज लोभी, ताही तैं न उड़ाने ।।
कुंडल मकर कपोलनि कें ढिग, जनु रवि रैनि बिहाने ।
भ्रुव सुन्दर नैननि गति निरखत, खंजन मीन लजाने ।।
अरुन अधर दुज कोटि ब्रज दुति, ससि गन रूप समाने ।
कुंचित अलक सिली मुख मिलि मनु लै मकरंद उड़ाने ।।
तिलक ललाट कंठ मुकुतावलि, भूषन मनिमय साने ।
सूरस्याम रस निधि नागर कें, क्यों गुन जात बखाने ।।

देखिरी नवल नंद किसोर ।
लकुट सौं लपटाइ ठाढ़े, जुवति जन मन चोर ।।
चारु लोचन हँसि बिलोकनि, देखि कै चित भोर ।
मोहिनी मोहन लगावत, लटकि मुकुट झकोर ।।
स्रवन धुनि सुनि नाद पोहत करत हिरदै फोर ।
सूर अङ्ग त्रिभंग सुंदर, छबि निरखि तृन तोर ।।

सूरदास

"श्रीकृष्ण आराध्य, परम आराध्य, प्राण-प्राणके आराध्य हैं। धर्म और संस्कृतिकी रक्षाकेलिये, वे असीम होकर भी अष्टमीकी रातमें सीमामें बँधे थे। उसीके हर्षमें धराके कण-कणसे फूट पड़ा है आनन्दका प्रवाह, अखण्डित प्रवाह !"

श्रीकृष्ण-जन्म-आनन्द, परमआनन्दका महान् पर्व

श्रीआनन्दप्रिय

भाद्रपदकी कृष्णा अष्टमी। यही वह पुनीत तिथि है, जिसकी अँधेरी गोदमें, पाँच सहस्र वर्ष पूर्व, श्रीकृष्णने शत-शत सूर्योंकी प्रभा और शक्तिको लेकर जन्म धारण किया था। श्रीकृष्णके जन्म-धारणसे वन्दनीया बन गयी वह काली तमिस्रासे भरी हुई अष्टमीकी रजनी। इतनी वन्दनीया बन गयी कि, कोटि-कोटि भारतीय उसके स्मृति-पथमें, अपने करोंमें नहीं, अपितु प्राणोंके सम्पुटमें भक्ति-भाव-कुसुम भरे हुए, बिखरनेकेलिए सदा समुत्सुक ही दिखायी पड़ते हैं। युगों बीत गये, असंख्यों बार यह अष्टमी आयी और आती जा रही है, पर भारतीयोंकी श्रद्धा-भावनाके पंख न टूटे, अपितु वह सागरकी भाँति उमड़ती ही जा रही है। जब भी अपने सुनिश्चित समयपर उसका पदार्पण होता है, भारतके कोने-कोनेमें आनन्द और उमंगके गीत गूँज उठते हैं। बाल, वृद्ध, तरुण, स्त्री, पुरुष सबके कण्ठोंसे निकल पड़ता है—'अष्टमी, श्रीकृष्ण जन्म-अष्टमी।' भविष्यमें भी युग-युगोंतक यह स्वर निकलता ही रहेगा। क्योंकि श्रीकृष्ण सर्वेश्वर हैं—परब्रह्म परमात्मा हैं। फिर उनके जन्म की तिथि क्यों न वन्दनीया बने, क्यों न उसकी अभ्यर्थना और अर्चनामें लोग अपने प्राणोंके कुसुम बिखेरें।

जरा श्रीमद्भागवतकारके शब्दोंमें देखिए तो, जब इस 'अष्टमी'का प्रथम बार 'कृष्ण जन्म अष्टमी' नामकरण हुआ था, तब मनुष्य ही नहीं, स्वयं प्रकृति भी किस प्रकार आनन्दके आँगनमें थिरक उठी थी—"रोहिणी नक्षत्र था। आकाशके सभी नक्षत्र, ग्रह और तारे शान्त-सौम्य हो रहे थे। दिशाएँ स्वच्छ प्रसन्न थीं। निर्मल आकाशमें तारे जगमगा रहे थे। पृथ्वीके बड़े-बड़े नगर, छोटे-छोटे गाँव, अहीरोंकी बस्तियाँ, और हीरे आदिकी खानें मंगलमय हो रही थीं। नदियोंका जल निर्मल हो गया था। रात्रिके समय भी सरोवरोंमें कमल खिल रहे थे। वनमें वृक्षोंकी पंक्तियाँ रंग-बिरंगे पुष्पोंके गुच्छोंसे लद गयी

थीं। कहीं पक्षी चहक रहे थे तो कहीं भौंरे गुनगुना रहे थे। उस समय पवित्र और शीतल मन्द सुगन्ध वायु अपने स्पर्शसे लोगोंको सुखदान करती हुई वह रही थी।'' आज भी श्रीकृष्ण जन्म अष्टमीके आगमन पर, भारतीयोंके हृदयके साथ ही साथ यदि प्रकृतिका हृदय भी आनन्द और उछाहसे उमड़ पड़ता हो तो विस्मय क्या ? क्योंकि प्रकृतिका एक नाम 'माया' भी है, और श्रीकृष्ण स्वयं मायापति हैं। फिर तो श्रीकृष्णकी पावन जन्मतिथि पर, प्रकृति के आँगनमें श्रद्धा और प्रेमके दीप जलने ही चाहिए। ये दीप चिरन्तन काल तक जलते ही रहेंगे। क्योंकि श्रीकृष्ण शाश्वत हैं, और शाश्वत होनेके कारण उनका मानव-आत्मा, और प्रकृतिके साथ शाश्वत सम्बन्ध है।

श्रीकृष्णकी जन्मतिथि होनेके कारण जिस प्रकार वन्दनीया वन गयी है भाद्रपदकी कृष्ण अष्टमी, उसीप्रकार श्रीकृष्ण जन्म और लीला-भूमि होनेके कारण वन्दनीया वन गयी है व्रजकी धरा। व्रजकी धरामें भी मथुराका वह धरती खण्ड, जो आज जन-जनके प्राणोंमें 'जन्मभूमि' के नामसे प्रेरणा और स्फूर्ति वनकर नाच रहा है, मनुष्योंसे ही नहीं, देवताओंसे भी वन्दित और अर्चित है। यही वह पुनीत स्थल है, जहाँ परव्रह्म परमात्माने युग पुरुषके रूपमें जन्म धारण किया था, दूसरे शब्दोंमें यही वह धरती है, जिसे परव्रह्म परमात्माको, अपने अंचलमें शिशुके रूपमें ग्रहण करनेका महान् सौभाग्य प्राप्त हुआ था। इतना ही नहीं, यही वह धरती है, जहाँ पुराणोंके अनुसार खड़े होकर देवताओंने परव्रह्म परमात्मा श्रीकृष्णकी प्रथम बार आरती की थी। कितनी पावन है यह धरती ! विश्वास नहीं होता, कि वड़े से वड़े वाणी-पुत्र कलाकारके शब्द भी उसकी पावनताको स्पर्श कर सकेंगे ! मथुरा की जन्मभूमि की भाँति ही गोकुल, वृन्दावन, नन्दगाँव, वरसाना और गोवर्द्धनकी वह धरती भी अधिक वन्दनीया है, जिसपर श्रीकृष्ण की लीलाएं अंकित हैं। श्रीकृष्णका नाम ओठों पर आते ही व्रजकी पवित्र धराका, जिसमें मथुरा, गोकुल, वृन्दावन, नन्दगाँव, वरसाना और गोवर्द्धन आदि सब कुछ है, चित्र आँखोंके सामने नाच उठता है। श्रीकृष्णकी जन्म और लीला-भूमि होने के कारण, देशके कोने-कोनेके नर-नारी झुण्ड के झुण्डमें व्रजकी धरतीपर आते हैं, और उसकी रजको श्रद्धासे अपने मस्तकपर लगाते हैं। व्रजकी धरतीका यह सौभाग्य और सुहाग अचल है। क्योंकि उसका सम्वन्ध उन अखिलेश्वर श्रीकृष्णसे है जो परव्रह्म परमात्माके रूपमें शाश्वत हैं—नित्य हैं।

कहना ही क्या उस उमङ्ग, उत्साह और आनन्दका, जो जन्म अष्टमीकी पुनीत तिथि के आगमनपर व्रजकी धराके प्राणोंमें तरङ्गायित हो उठता है। युगोंकी प्राचीनस्मृतियाँ एक साथ ही साकार हो उठती हैं—"यही वह भाद्र अष्टमी है, जव भारतकी संत्रासित, संपीड़ित जनता और धर्म तथा संस्कृतिके उद्धारार्थ श्रीकृष्णने मथुरामें कंसके कारागारमें जन्म धारण किया था। उन श्रीकृष्णने, जिन्होंने परव्रह्म परमात्मा होकर भी व्रजके गोपोंके साथ वनमें घूम-घूमकर गायें चरायीं, अठखेलियां कीं और उनके घरोंमें घुस-घुसकर, माँग-माँगकर दही और नवनीत खाये। इतना ही नहीं, जिन्होंने उनकी गायोंकी रक्षाके लिये—

उनके मानवी अधिकारोंके लिये 'कालिया'से युद्ध किया, कंसको दंड दिया, और दंड दिया उन सम्पूर्ण नृपतियोंको, जो धर्मके पथपर शिलाखंडकी तरह बिछे हुए थे। उमड़ पड़ता है श्रीकृष्ण जन्म अष्टमी पर ब्रजकी धरतीका हृदय। यों तो सम्पूर्ण भारतकी धरतीका हृदय श्रीकृष्ण जन्मअष्टमी पर आनन्द और उत्साहसे थिरक उठता है। चाहे जिस नगर, गाँवमें जाइए, अधर-अधरपर श्रीकृष्णकी चर्चा सुननेको मिलेगी। केवल चर्चाही नहीं, उनकी लीलाओंकी मोहक और मधुर झाँकियोंके साथ ही साथ देखनेको मिलेगा, 'उल्लास' और 'आनन्द'का वह महोत्सव, जो एकबार मनको ही नहीं, आत्माको भी चिर आनन्द में डुबो देता है। पर ब्रजकी धरतीमें तो श्रीकृष्ण जन्मअष्टमी एक अनूठा ही रङ्ग धारण करती है। ऐसा अनूठा रंग, जिसे देखकर मनमें होता है कि, कहीं सचमुच भगवान् श्रीकृष्णने पुनः जन्म तो धारण नहीं किया।

जन्मअष्टमीके आगमनके पखवारों पहले से ही ब्रजवासी उसकी प्रतीक्षाके पथमें अपनी आँखें बिछा देते हैं। ब्रजसे दूर गये हुए ब्रजवासी अपने-अपने घरोंको पहुँचनेकी तैयारीमें व्यस्त हो जाते हैं। भारतके दूसरे-दूसरे प्रान्तोंके लोग भी झुण्डके झुण्डमें, विविध वेशोंमें मथुरा और वृन्दावनकी सड़कों पर दिखाई देने लगते हैं। मन्दिरोंमें श्रावणके झूले पड़ जाते हैं। मथुराके द्वारिकाधीशके मन्दिरमें कलात्मक "घटाओं" का निर्माण होने लगता है। वृन्दावन, गोकुल और नन्दगाँवके मन्दिरोंमें भी झाँकियाँ सजने लगती हैं। स्थान-स्थान पर रासलीलाएँ होने लगती हैं। भक्तोंके कीर्तन-स्वरोंके साथ मृदंग, झांझ, करताल और मजीरेकी खनक भी कानोंमें पड़ने लगती है। भाँति-भाँति वेषोंमें साधु, सन्यासी और साधक दृष्टिगोचर होने लगते हैं। ऐसा लगता है, मानों वस्तुतः ब्रजकी धरामें पुनः श्रीकृष्णका अवतार ही होने वाला है, और ये सबके सब अपने प्राणोंके कुसुम उनके चरणोंपर बिखेरनेके लिए सोल्लास—सोमंग ब्रजकी धरामें बिखर पड़े हैं।

जन्म अष्टमीकी पावन तिथि पर तो प्राण-प्राणसे, हृदय-हृदयसे आनन्दकी धारासी प्रवाहित हो उठती है। गरीबोंकी झोंपड़ियोंसे लेकर अमीरोंके महलों तकमें 'लाला' के जन्मोत्सवके साज-सिंगारमें लोग व्यस्त दृष्टिगोचर होते हैं। अमीरोंके घरोंमें बिजलीकी बत्तियाँ हँसती हैं, भाँति-भाँतिकी शृंगारमयी झाँकियां सजती हैं, तो गरीब अपने तुलसीके पत्तोंमें ही अपनी श्रद्धाका शृंगार करता है। छोटे-बड़े सभी व्रत धारण करते हैं। यमुनाके किनारे मुखरित हो उठते हैं—भक्तिके गीतोंसे, श्रीकृष्ण भगवान्के स्तवन शब्दोंसे। मन्दिरोंके भीतर की चहल-पहलका तो कहना ही क्या है? पुजारी, कर्मचारी सभी व्यस्त, सभी आनन्दमें डूबे हुए। चारों ओर झांकियां—रंग-बिरंगी झाँकियां। कहीं नृत्य, कहीं कीर्तन, कहीं रासलीला, कहीं लोककथा-लीला। मन-मनसे, प्राण-प्राणसे फूटा हुआ यह आनन्द-प्रवाह सबके मनको डुबा देता है। ऐसा डुबा देता है कि कुछ देरके लिये मनुष्य सचमुच भूल जाता है—दुःख क्या है, चिन्ता क्या है, जगत् क्या है?

रातमें रोहिणी नक्षत्र लगते ही मन्दिरों में घंटे बज उठते हैं। श्रीकृष्णकी जय-

ध्वनिसे आकाश गूंज उठता है। दर्शक, भक्त, गृहस्थ, साधु, सन्यासी सभी दर्शनके लिए मन्दिरोंकी ओर दौड़ पड़ते हैं। मन्दिरोंमें श्रद्धा और प्रेमकी साकार भीड़ सी लग जाती है। लगता है, मानों सचमुच श्रीकृष्णका जन्म हुआ हो, जिनके पुनीत दर्शनके लिये मनुष्य ही नहीं, देवलोकके देवता भी व्रजकी धरतीपर उतर आये हों। क्योंकि उस रातमें मन्दिरोंमें जिस श्रद्धा और प्रेमका साकार स्वरूप देखनेको मिलता है, वह देवताओंको छोड़कर और किसीमें नहीं मिलता।

जन्मअष्टमीके उत्सवका समापन है दधिकांदो। दूसरे दिन मन्दिरोंमें दधिकांदोकी धूम मच जाती है। चाहे जिस मन्दिरमें जाइये, जहाँ जाइये, दधि मिश्रित हल्दीका लेप अवश्य कपड़ों पर लगेगा। बिहारीजीके मन्दिरमें तो लेप के साथ ही साथ फल और वस्त्र तक लुटाये जाते हैं। सज-धजके साथ बड़े-बड़े जुलूस भी निकलते हैं, जिनमें जय-जयकार और कीर्तन तथा स्तवनगीतोंके साथ ही साथ फल-फूल भी लुटाये जाते हैं। इतना ही नहीं, लोग झुण्ड के झुण्डमें सुमधुर वाद्योंकी लयपर झूमते, गाते और नृत्य भी करते हैं। ऐसा लगता है, मानों सचमुच श्रीकृष्ण-जन्म हुआ हो, जिससे हृदयकी भक्ति और श्रद्धा ही साकार बनकर उमड़ पड़ी है, और नर-नारियों के रूपमें थिरक रही है।



श्रीकृष्ण-प्रेम

सदा हरि प्रेममें मस्त रहो, हरिनाममें रमते रहो, परोपकारके व्रती बने रहो, अवश्य ही श्रीकृष्ण कृपा करेंगे। श्रीकृष्णका मोल बस एक लालसा है, अन्य कोई धन या रत्न देकर श्रीकृष्णको नहीं पा सकते। जपबल, तपबल, व्रत, अध्ययन आदि किसी वस्तुसे उन्हें वश में नहीं किया जा सकता, इसीलिए कहता हूँ प्रेम बना रहे। श्रीकृष्णके लिए सब समान हैं। जगत्को अपना समझो, जगत् कृष्णका है, कृष्ण हमारे हैं, इसलिए उनकी वस्तु अवश्य ही प्रिय होगी। जगत्को जगत् रूपमें मत प्यार करो, जगत्को श्रीकृष्णका जान कर प्यार करो। ऐसा करनेसे हिंसा नहीं होगी, किसीका द्वेष न होगा, क्योंकि जब किसी वस्तुको कोई दूसरेकी समझ लेता है, तब उसे कभी अपनी नहीं समझ सकता। चरवाहे अपने मालिककी गौओंको चराते हुए आपसमें उन गौओंको अपनी कहकर बतलाया करते हैं, कहते हैं— भाई, हमारी गौओंको घेर लाओ, मेरी गौ बीमार है, मेरी गौ के बछड़ा हुआ है इत्यादि। पर यह सब कहते हुए भी इसका सुख दुःख उन्हें कुछ नहीं होता; क्योंकि अपने दिल में वे जानते हैं कि गौएं उनकी नहीं हैं, केवल मुंहसे अपनी बतलाते हैं। इसी प्रकार यदि यह बात मनको जँच जाय कि, यह सब जो कुछ है श्रीकृष्णका है, तो किसी भी वस्तुमें आसक्ति न होगी और फिर भी सब वस्तुओंको अपनी कह सकेंगे, इसीका नाम संन्यास, आत्म संयम आदि हैं।



महात्मा श्रीहरनाथ ठाकुर

"श्रीकृष्णके अवतारके मूलमें धर्म-संस्थापनका ही भाव है। श्रीकृष्ण भगवान्‌ने धरती पर अवतरित होकर उसे धर्म, शांति, सुख और मानवताके अमृतसे अभिषिक्त कर दिया। जिस प्रकार उनके अवतारके मूलमें रहस्यात्मकता है, उसी प्रकार उनकी जन्म-कथा भी बड़ी रहस्यमयी और आनन्ददायिनी है।"

श्रीकृष्णका अवतार और उसका रहस्य

श्रीयशवन्तसिंह एम० ए०

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा,
भूतानामीश्वरोऽपिसन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय,
सम्भवाम्यात्ममायया ॥
यदा यदा हि धर्मस्य,
ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य,
तदाऽऽत्मानं सृजाम्यहम् ॥
परित्राणाय साधूनां,
विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय,
सम्भवामि युगे युगे ॥

श्रीमद्‌भगवद्‌गीतामें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने कहा है—"मैं अविनाशी स्वरूप अजन्मा होने पर भी तथा सब भूतप्राणियोंका ईश्वर होने पर भी अपनी प्रकृति को अधीन करके योगमायासे प्रकट होता हूँ। हे भारत, जब-जब धर्मकी हानि और अधर्मकी वृद्धि होती है तब-तब मैं अपने रूपकी रचना करता हूँ अर्थात् प्रकट होता हूँ। साधु-पुरुषोंका उद्धार, दूषित कर्म करनेवालोंका नाश तथा धर्मस्थापन करनेकेलिए युग-युग में मैं प्रकट होता हूँ।"

श्रीमद्भागवतमहापुराणमें इस बातका उल्लेख बहुत विस्तारसे मिलता है कि, भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको किन-किन कारणोंके वशीभूत पृथ्वीपर अवतरित होना पड़ा। दशम स्कन्धके पूर्वार्धमें श्रीशुकदेवजी परीक्षितजीसे कहते हैं—"असुर रूप दुष्ट राजाओंके भारसे आक्रान्त दुःखिनी पृथ्वी गोरूप धारण करके करुण क्रन्दन करती हुई ब्रह्माजीके पास जाती है। क्षीराब्धिशायी भगवान् विष्णु पृथ्वीपति हैं। अतः ब्रह्माजी, शंकरजी और अन्य देवताओंको साथ लेकर क्षीरसागर पर पहुँचते हैं। वहाँ पर समाधिस्थ अवस्थामें श्रीब्रह्माजी को भगवान् विष्णुकी आकाशवाणी सुनाई देती है। वे देवताओंसे कहते हैं, देवताओं! मैंने भगवान् विष्णुकी आकाशवाणी सुनी है, उसे तुम लोग मेरे द्वारा सुनो और फिर विना विलम्ब इसीके अनुसार करो। हम लोगोंकी प्रार्थनाके पूर्व ही भगवान् पृथ्वीके सन्तापको जान चुके हैं। वे ईश्वरोंके भी ईश्वर अपनी कालशक्तिके द्वारा धराका भार हरण करनेके लिए जबतक पृथ्वीपर लीला करें, तबतक तुम लोग भी यदुकुलमें जन्म लेकर उनकी लीलामें योग दो। वे परमपुरुष भगवान् स्वयं वसुदेवजीके घरमें प्रकट होंगे। उनका तथा उनकी प्रियतमा (श्रीराधाजी) की सेवाकेलिए देवांगनाएँ भी वहाँ जन्म धारण करें। स्वयं प्रकाश भगवान् शेष भी, जो भगवान्की कला होनेके कारण अनन्त हैं और जिनके सहस्र मुख हैं, भगवान्का प्रिय कार्य करनेकेलिए उनसे पहले ही उनके बड़े भाईके रूपमें अवतार ग्रहण करेंगे। भगवान्की वह ऐश्वर्यशालिनी योगमाया भी, जिसने सारे जगत्को मोहित कर रखा है, उनकी आज्ञासे उनकी लीलाके कार्य सम्पन्न करनेकेलिए अंशरूपसे अवतार ग्रहण करेगी।"

कुछ विद्वानोंने तीन तत्व माने हैं—विष्णु, महाविष्णु और महेश्वर। भगवान् श्रीकृष्णमें इन तीनोंका समावेश है। ब्रह्मवैवर्त पुराणके श्रीकृष्ण-खण्डमें आया है कि, पृथ्वी भाराक्रान्त होकर ब्रह्माजीकी शरणमें जाती है। ब्रह्माजी देवताओंको साथ लेकर महेश्वर श्रीकृष्णके गोलोक-धाममें पहुँचते हैं। नारायण ऋषि भी उनके साथ रहते हैं। ब्रह्मा तथा देवताओंकी प्रार्थना पर भगवान्श्रीकृष्ण अवतार ग्रहण करना स्वीकार करते हैं। तब अवतारका आयोजन होने लगता है। अकस्मात् एक मणि-रत्न-खचित अपूर्व सुन्दर रथ दिखायी पड़ता है। उस रथ पर शंख-चक्र-गदा-पद्म धारण किये हुए महाविष्णु विराजित हैं। वे नारायण रथसे उतरकर महेश्वर श्रीकृष्णके शरीरमें विलीन होजाते हैं, परन्तु महाविष्णुके विलीन होने पर भी कृष्णावतारका स्वरूप पूर्णतया नहीं बना, तब एक दूसरे रथ पर आरूढ़ पृथ्वीपति श्रीविष्णु वहीं दिखाई दिये और वे भी श्रीराधिकेश्वर श्रीकृष्णके शरीरमें विलीन होगये। अब अवतारकेलिए पार्थिव मनुष्य शरीरकी आवश्यकता हुई। नारायण ऋषि वहाँ थे ही, वे भी उन्हींमें विलीन होगये। इस प्रकार विष्णु महाविष्णु-नारायणरूप स्वयं महेश्वर भगवान्कृष्णने अवतार लिया तथा नारायणके साथी नर ऋषि अर्जुन रूपसे अवतार लीलामें सहायतार्थ अवतरित हुए।

प्राचीन-कालमें शूरसेन नामके एक यदुवंशी राजा थे। वे मथुराके राजा थे। शूरसेनके पुत्र वसुदेवजी थे। वसुदेवजी एक समय जब अपनी नव-विवाहिता पत्नी देवकीके साथ घर जाने के लिए रथ पर सवार हुए, उस समय देवकीके चचेरे भाई कंसने जो उग्रसेन

का लड़का था, अपनी बहन देवकीको प्रसन्न करनेकी अभिलाषासे उसके रथकी बागडोर अपने हाथोंमें ले ली। देवकीके पिता देवकने, जो अपनी पुत्रीको अत्यधिक प्यार करते थे, दहेज रूपमें अपार धन-राशि अपनी कन्याको प्रदान किया था। जिस समय कंसने रथके घोड़ोंको हाँकनेकेलिए रास अपने हाथोंमें ली, उसी समय आकाशवाणी ने उसे सम्बोधन करके कहा—"अरे मूर्ख ! जिसको तू रथमें बैठाकर लिए जा रहा है, उसी के आठवें गर्भ की सन्तान तुझे मार डालेगी।' कंस बड़ा दुष्ट और पापी था। आकाशवाणी सुनते ही उसने तलवार खींच ली और अपनी बहनकी चोटी पकड़कर उसे मारनेकेलिए तैयार हो गया। वसुदेवजीने कहा, 'राजकुमार ! आप भोजवंशके होनहार वंशधर तथा अपने कुलकी कीर्ति बढ़ाने वाले हैं। बड़े-बड़े शूरवीर आपके गुणोंकी सराहना करते हैं। इधर एक तो यह स्त्री है, दूसरे आपकी बहन, तीसरे विवाह का शुभ अवसर है।' परन्तु वह क्रूर कंस राक्षसोंका अनुगामी हो रहा था, इसलिए उसने अपने घोर संकल्पको नहीं छोड़ा। वसुदेवजीने कंसको किसी प्रकार समझा-बुझाकर फिर कहा—"सौम्य ! आपको देवकीसे कोई भय नहीं होना चाहिए, जैसा कि आकाशवाणीने कहा है, भय है पुत्रों से, इसके पुत्र मैं आपको लाकर सौंप दूँगा।" कंस वसुदेवजीके उपर्युक्त विचारसे सहमत हो गया। कंसको सत्यनिष्ठ वसुदेवजीकी बातोंका पूरा विश्वास था, अतः उसने देवकीको मारनेका विचार त्याग दिया।

एक वर्षके उपरान्त देवकीके गर्भसे प्रथम पुत्र उत्पन्न हुआ, इसका नाम कीर्तिमान था। वसुदेवजीको बहुत कष्ट हुआ कि, कुछ ही समयके उपरान्त क्रूर कंस इसे मार डालेगा, किन्तु इससे भी बड़ा कष्ट उन्हें इस बातका हुआ कि, कहीं मेरे वचन झूँठे न हो जायें। वे अपने इस नन्हेसे सुकुमार बालकको लेकर कंसके पास पहुँचे। कंस वसुदेवजीकी इस सत्यनिष्ठासे बहुत प्रसन्न हुआ और उसने हँसकर कहा—"आप इस बालकको ले जाइये। इससे मुझे कोई भय नहीं, क्योंकि आकाशवाणीके अनुसार देवकीके आठवें गर्भसे उत्पन्न सन्तानके द्वारा मेरी मृत्यु होगी।" वसुदेवजीने कहा—'ठीक है' और वे उस बालकको लेकर लौट आये। किन्तु वे इस बातको भली भाँति जानते थे कि, कंसका विचार किसी भी क्षण बदल सकता है, इसलिए उन्होंने कंसकी बातपर विश्वास नहीं किया।

उधर भगवान् नारद कंसके पास आये और उससे बोले कि, 'कंस व्रजमें रहने वाले नन्द आदि गोप, उनकी स्त्रियाँ और नन्द, वसुदेव दोनोंके सजातीय बन्धु-बान्धव और सगे सम्बन्धी सबके सब देवता हैं। जो इस समय तुम्हारी सेवा कर रहे हैं, वे भी देवता हैं।' उन्होंने यह भी कहा कि—'दैत्योंके कारण पृथ्वीका भार बढ़ गया है, इसलिए देवताओंकी ओरसे अब उनके वधकी तैयारी हो रही है।'

भगवान् नारदने कंसको आठ पंखड़ियोंवाला एक कमल (अष्टकमलदल) दिया और उससे पूछा कि इसमें कितने दल हैं, इसमें कौन पहला और कौन आठवाँ है ? कंसने उसे हर प्रकारसे गिनकर देखा कि, उस कमलकी प्रत्येक पंखड़ी पहली और आठवीं हो सकती है। भगवान् नारद उसके पापका घड़ा शीघ्र ही भर जाने वाले उपायको बताकर

वहाँसे चले गये और इधर कंसने देवकीके आठों पुत्रोंको मार डालनेका फिरसे निश्चय कर लिया।

कंसने तत्काल देवकी और वसुदेवको हथकड़ी, बेड़ीसे जकड़ दिया और उन्हें कारागारमें डलवा दिया। इसके बाद कंस प्रतिवर्ष देवकीके पुत्रोंको शिला पर पटक कर मारता चला गया। उसके पिता उग्रसेनने जब इस बातका विरोध किया तो उन्हें भी कंसने कैद कर लिया और शूरसेन देशका राज्य वह स्वयं करने लगा।

कंस एक तो स्वयं बड़ा बली था और दूसरे, उसे मगध नरेश जरासंधकी बहुत बड़ी सहायता प्राप्त थी। तीसरे, उसके साथी थे—प्रलम्बासुर, बकासुर, चाणूर, तृणावर्त, अघासुर, मुष्टिक, अरिष्टासुर, द्विविद, पूतना, केशी और धेनुक। इनके अतिरिक्त बाणासुर और भौमासुर आदि बहुतसे दैत्य राजा भी उसके सहायक थे। इनको साथ लेकर वह यदुवंशियोंको नष्ट करने लगा। ये लोग भयभीत होकर कुरु, पाञ्चाल, केकय, शाल्व, विदर्भ, निषध, विदेह और कोसल देशोंमें जा बसे। कंसने एक-एक करके देवकीके छः बालक मार डाले। देवकीके सातवें गर्भमें भगवान्‌के अंशस्वरूप श्रीशेषजी—जिन्हें अनन्त भी कहते हैं, पधारे। देवकीको अत्यन्त शोक हुआ कि, प्रत्येक बालककी तरह कंस इसे भी मार डालेगा। विश्वात्मा भगवान्‌ने देखा कि, क्रूर कंस यदुवंशियोंको अत्यधिक सता रहा है। उन्होंने अपनी योगमायाको यह आदेश दिया कि, 'देवि, तुम व्रज जाओ। वहाँ नन्द बाबाके गोकुलमें वसुदेवकी पत्नी रोहिणी निवास करती है। इस समय मेरा अंश, जिसे शेष कहते हैं, देवकीके उदरमें गर्भ रूपसे स्थित है, उसे वहाँसे निकालकर रोहिणीके पेटमें रख दो। कल्याणी! अब मैं अपने समस्त ज्ञान,बल आदि अंशोंके साथ देवकीका पुत्र बनूँगा और तुम नन्दबाबाकी पत्नी यशोदाके गर्भसे जन्म लेना।"

योगमायाने देवकीका सातवाँ गर्भ रोहिणीके उदरमें रख दिया। रोहिणीके गर्भसे उत्पन्न यह बालक कालान्तरमें बलभद्र या बलराम कहलाया। इधर पुरवासी बड़े शोकसे आपसमें कहने लगे—"हाय! बेचारी देवकीका यह गर्भ तो नष्ट होगया।"

इस बार कंसने देखा कि, देवकीका मुखमण्डल सूर्यके समान दीप्त है। कंसने यह स्पष्ट अनुभव किया कि, अन्य गर्भ धारणमें देवकीका मुख-मण्डल इस बारकी तुलनामें लेश-मात्र भी तेजयुक्त न था। उसे पूरा विश्वास हो गया कि, देवकीका यह आठवाँ गर्भ उसकी जानका ग्राहक है। कंस जानता था कि, अगले जन्ममें मैं कालनेमि असुर था और विष्णुने मुझे मार डाला था, अब फिर विष्णु मुझे मार डालनेके लिए देवकीके गर्भमें आ गये हैं। क्रूर कंसने अपनी विकट परिस्थितियों पर विचार करना शुरू किया। उसने सोचा कि, देवकीको मारना तो ठीक नहीं होगा, क्योंकि वीरपुरुष स्वार्थवश अपने पराक्रम को कलंकित नहीं करते। एक तो यह स्त्री है, दूसरे बहिन और तीसरे गर्भवती है। इसको मारनेसे तो तत्काल ही मेरी कीर्ति, लक्ष्मी और आयु नष्ट हो जायेगी। इस प्रकार भगवान्‌कृष्णने कंसके विचार पलट दिये।

वैवस्वत मन्वन्तीय अष्टाविंश चतुर्युगके द्वापरके अन्तमें भाद्रपदकी कृष्णाष्टमीके दिन पृथ्वीको श्रीकृष्णके प्राकट्यका महान् सौभाग्य प्राप्त हुआ। उस समय चन्द्रमा रोहिणी नक्षत्रमें स्थित थे और आकाशमें सभी नक्षत्र, ग्रह, तारे शान्त और सौम्य हो रहे थे। भक्तोंका कहना है कि, भगवान् अजन्मा और अविनाशी हैं, वे अपने कर्मफलोंके कारण किसी स्त्रीके गर्भमें स्थित नहीं होते। यहाँ पर भी भगवान्ने देवकीको समस्त गर्भकालीन लक्षणोंसे युक्त कर दिया था। भाद्रपदकी अँधियारी अष्टमीकी अर्द्धरात्रिको कंसके कारागारमें देवकी और वसुदेवके सम्मुख अलौकिक चतुर्भुज रूपधारी भगवान्विष्णुका प्राकट्य हुआ। देवकी इनके चतुर्भुज रूपकी तीव्र प्रभाको नहीं सहन कर सकीं और बोलीं—विश्वात्मन्! अपने इस शंख-चक्र-गदा-पद्मधारी अलौकिक रूपको छिपा लो।"

श्रीभगवान्ने कहा—'देवि! स्वायम्भुव मन्वन्तरमें जब तुम्हारा पहला जन्म हुआ, उस समय तुम्हारा नाम था पृश्नि और ये वसुदेव सुतपा नामके प्रजापति थे। जब ब्रह्माजीने तुम दोनोंको सन्तान उत्पन्न करनेकी आज्ञा दी, तब तुम लोगोंने इन्द्रियोंका दमन करके उत्कृष्ट तपस्या की। मैंने प्रसन्न होकर वर माँगनेको कहा, उस समय तुम दोनोंने मेरे जैसा ही पुत्र माँगा। मैं तुम दोनोंका पुत्र हुआ और 'पृश्निगर्भ' नामसे विख्यात हुआ। फिर दूसरे जन्ममें तुम अदिति हुईं और वसुदेव हुए कश्यप। उस समय भी मैं तुम्हारा पुत्र हुआ। मेरा नाम था 'उपेन्द्र'। शरीर छोटा होनेके कारण लोग मुझे 'वामन' भी कहते थे। सती देवकी, तुम्हारे इस तीसरे जन्ममें भी उसी रूपसे फिर तुम्हारा पुत्र हुआ हूँ।"

इतना कहकर भगवान् चुप हो गये और एक साधारण शिशुका रूप धारण कर लिया। तब वसुदेवजीने भगवान्की प्रेरणासे अपने पुत्रको लेकर सूतिकागृह (कारागार) से बाहर निकलनेकी इच्छा की। उसी समय नन्द-पत्नी यशोदाके गर्भसे उस योगमायाका जन्म हुआ, जो भगवान्की शक्ति होनेके कारण उनके समान ही जन्म रहित हैं। उस योगमायाने द्वारपाल और पुरवासियोंकी समस्त इन्द्रिय-वृत्तियोंकी चेतना हरली, वे सबके सब अचेत होकर सो गये। बन्दीगृहके सभी दरवाजे बन्द थे, वे अपनेआप खुल गये। वसुदेवजीकी हथकड़ी और बेड़ियाँ भी अपनेआप खुल गयीं। वसुदेवजी भगवान् श्रीकृष्णको लेकर नन्दबाबाके गोकुलकी ओर चलने लगे। उस समय बादलोंसे पानीकी फुहार पड़ रही थीं, अतः शेषजी अपने फणोंसे जलको रोकते हुए भगवान्के पीछे-पीछे चलने लगे। यमुनाजी उस समय बहुत बढ़ी हुई थीं, किन्तु उन्होंने भी भगवान्श्रीकृष्णका चरणस्पर्श करके उन्हें मार्ग दे दिया। वसुदेवजीने नन्दबाबाके गोकुलमें पहुँचकर देखा कि, सबके सब गोप नींदमें अचेत पड़े हुए हैं, यहाँ तक कि, नन्दबाबा और यशोदाजी भी योगमायाके प्रभावसे वसुदेवजीका आगमन आदि कुछ भी न जान सकीं। वसुदेवजीने अपने पुत्रको यशोदाजीकी शैय्या पर सुला दिया और उनकी सद्यःजाता कन्याको लेकर बन्दीगृहमें लौट आये। जेलमें पहुँचकर उस कन्याको वसुदेवजीने देवकीकी शैय्या पर सुला दिया और अपने हाथोंमें हथकड़ी और बेड़ी डाल ली। भगवान्के प्रभावसे बंदीगृह पहले की तरह ही बन्द हो गया।

श्रीनन्द-यशोदाका वात्सल्यप्रेम सर्वथा विशुद्ध था, उसमें ऐश्वर्य ज्ञान का लेशमात्र भी सम्बन्ध नहीं था। गोपराज श्रीनन्द समस्त समृद्धियोंसे सम्पन्न थे, पर उनके पुत्र नहीं था। उनकी अवस्था ढल गयी थी। चौथापन समीप था। पुत्र होनेकी आशालता क्रमशः सूखती जा रही थी। इसलिए उपनन्द आदि वृद्ध गोपोंने परामर्श करके एक सुपुत्रेष्टि-यज्ञका आयोजन किया। सबने यज्ञपुरुषसे गोपराज नन्दको पुत्र प्रदान करनेकी प्रार्थना की।

बाहर यज्ञ हो रहा था। इधर अन्तःपुरमें श्रीनन्द, यशोदाजीसे वार्तालाप कर रहे थे। वे कह रहे थे—"यशोदा रानी! मैंने स्वप्नमें एक अतीव सुन्दर बालकको देखा है, वह भगवान् नारायणसे भी सुन्दर था।" यशोदाजीने इसीसे मिलता-जुलता अपना स्वप्न भी श्रीनन्दजीको सुनाया। ऐसा असम्भव समझकर भी दोनों पति-पत्नी अत्यधिक लगनके साथ श्रीहरिका अत्यन्त प्रिय द्वादशीव्रत नियमपूर्वक करने लगे। जैसे-जैसे समय बीतता गया उस दम्पतिकी लालसा दिव्यातिदिव्य परम सुन्दर बालकको पुत्र रूपमें प्राप्त करनेकी बढ़ती ही गयी। एक दिन व्रतानुष्ठान सर्वांगपूर्ण सम्पन्न हो गया। उस दिन सामान्य निद्राके समय उन्होंने भगवान् नारायणको देखा। भगवान् कह रहे थे—"अहो नन्द-यशोदे! तुम मुझमें आसक्त और परमभक्त हो। तुम लोग अब इतना कष्ट मत सहन करो, तुम लोगोंको निश्चय ही तुम्हारे मनोनुकूल दिव्य बालककी प्राप्ति होगी।"

कुछ दिन बाद 'पौर्णमासी' नामकी एक तपस्विनी गोकुलमें आयी। उसके साथ एक बालक था 'मधुमंगल'। वह स्नातक था। पौर्णमासी देवी देवर्षि नारदजीकी शिष्या और श्रीकृष्णजीके अध्यापक सांदीपनिजीकी माता थीं। मधुमंगल पौर्णमासीजीका पौत्र और सांदीपनिजीका पुत्र था। पौर्णमासी देवीने गोपगणोंको बताया कि, 'गोपराज नन्दको एक पुत्र होगा, और वह पुत्र अखिल जगत्को आनन्द-सिन्धुमें निमग्न कर देगा। बस तभीसे यशोदाजीके दिव्य भगवद्भावमय गर्भलक्षण प्रकट होने लगे और आठ महीनेके अनन्तर भाद्रपद कृष्णाष्टमीके मंगलमय दिन आनन्दमयी योगमायाका जन्म हुआ, जिसे वसुदेवजी तुरन्त ही उठा ले गये और अपने परम सुन्दर दिव्य बालक श्रीकृष्णको यशोदाजी के पर्यंकपर सुलाते गये। गोविन्दके इस प्राकट्यसे पृथ्वी, स्वर्ग, आकाश, वायु आदि सभी परमानन्दमें निमग्न होगये।

गीत

चाहे तुम मजबूरी कहलो,
चाहे कहलो हैरानी है,
पूर्व जन्म का साथ जो ठहरा,
चाहे कहलो नादानी है,
किन्तु तुम्हारी नजरों से मैं,
अपनी नजर मिला न सकूंगा ॥१॥

मेरे मन के पंछी सोचो,
कब तक जग में रहना है,
चन्द दिनों का रैन बसेरा,
फिर दूजे घर जाना है,
चाहे दुनिया मुझको रोके,
पर मैं साथी रुक न सकूंगा ॥२॥

श्रीगेंदालाल आर्यबन्धु

"श्रीकृष्ण जन्म-कथाके मूलमें जितने पौराणिक तथ्य हैं, उनसे कहीं अधिक ऐतिहासिक और वैज्ञानिक हैं। श्रीकृष्ण जन्म-कथा अपने ऐतिहासिक, वैज्ञानिक, और वास्तविक तथ्योंके कारण ही सर्वप्रिय, और जन-जन प्राणसंपोषिका बन सकी है। हम श्रीकृष्ण जन्म-कथाको जितनी ही अधिक वैज्ञानिक दृष्टिसे देखेंगे, उतना ही उसमें नया निखार पायेंगे।"

श्रीकृष्ण-जन्मकथामें वैज्ञानिक तत्त्व

श्रीभगवानसहाय पचौरी 'भवेश' एम. ए.

वैदिक युगसे लेकर आज तक कोटि-कोटि मनीषी, साधक, भक्त, योगी, यती, कवि और चिन्तकोंने जिस चैतन्य तत्त्वकी खोजकी है, समाजने जिसका अनुभव नये-नये नाम और नये नये रूपोंमें किया है, जिसने युग-युगको प्राण, प्रेरणा और आनन्द प्रदान किया है, उस आनन्दघन चैतन्यको साधकोंने 'कृष्ण' संज्ञा दी है। कृष्ण' एक परमतत्त्व है—'कृष्णात् परं किमपि तत्त्वमहं न जाने।' कृष्ण स्वयं भगवान् हैं—'कृष्णस्तु भगवान् स्वयं।' कृष्ण जगद्गुरू हैं—'कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम्'। इस एक 'कृष्ण' नाम धारी तत्त्वमें चिन्तकों और दार्शनिकोंने अनेक रूप देखे हैं। इस प्रकारके चिन्तनसे संस्कृतका पूरा वाङ्मय भरा पड़ा है। कृष्ण और कृष्ण कथा अनन्त है। कृष्ण चरित्र इससे भी अधिक आश्चर्यमय और आह्लादकारी है। भगवान् श्रीकृष्णने अपने समुद्भवका कारण गीतामें इस प्रकार कहा है- 'यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत। अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्। परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्। धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे।' धर्मका विनाश और अधर्मका उत्थान ही भगवान् कृष्णके अवतारका कारण है। युग युग में साधुओंके परित्राण और दुष्टोंके विनाशार्थ श्रीकृष्ण नामका महत्तत्त्व पुनः पुनः धरती पर अवतरित होता है। वह दशरथ अजिर विहारी बनकर कभी कौशल्याकी गोदमें खेलता है तो कभी देवकी गर्भसंभूत होकर यशोदानन्दके आनन्दका हेतु बनता है। कहीं रावणादि तो कहीं कंस चाड़ूर आदिका संहार करके धरतीका भार उतारता है। तत्त्व एक है, रूप अनेक। यह प्रभुका लोक रंजक रूप है। अवतार रूपमें भगवान् मानव बनकर नाना मानवीय लीलाओं द्वारा जन गण मनमें रमता है। विविधऐश्वर्यमय लीलाओं द्वारा यही

अचिंत्य तत्व माता, पिता, बन्धु, बान्धव, सन्त, भक्त और अन्य इतर, सम्बन्धोंका अनुगत होकर समाजको आनन्द वारिधिमें निमग्न करता है। 'कवहूँ ससि माँगत रारि करै कवहूँ प्रतिविम्ब निहारि डरै।' कभी वह 'किलकत कान्ह घुटेरुवन धावत' तो कभी वह कहता है माँ 'मैं चन्द खिलौना लैहों'। कभी वह वालघातिनी पूतनाका स्तन पान कर उसके अंश को हर लेता है तो कभी खेल ही खेलमें गेंदके पीछे कालीदहमें कूदकर असामाजिक तत्व कालीनागको नाथता है। कभी मां से 'मचलि मचलि माँगत हर माखन रोटी' तो कभी अपने मुखमें तीनों लोकोंको दिखाकर माँ को आश्चर्य विजड़ित कर देता है। यही बालक नटवर नन्दकिशोर कभी गोपियोंका माखन लूटता दिखता है तो कभी बकासुर, अघासुर, वत्सासुर, देनुकासुर, शकटासुर, कुवलियापीड़, चाड़ूर, मुष्टिक और कंस जैसे भीमकाय असुरोंको पछाड़कर उनकी छातीपर खड़ा दिखाई देता है। क्या क्या लीलायें हैं उस असुरारी की ! क्या क्या रूप हैं उसके कि,कहते नहीं बनते। साधारणसे साधारण है,और असाधारणसे असाधारण, बुद्धिगम्य भी, और मनवाणी सों अगम अगोचर भी। वह अजन्मा है, पर देवकी के गर्भसे उत्पन्न होकर यशोदा के आँगनमें खेलता है, रोता है, गाता है, खीजता है, मचलता है, मटकता है, नाचता है। गायें चराता है, मुरली बजाता है, ताताथेई नाच करता है, रास करता है,चीर चुराता है, छिप जाता है, प्रकट होता है, सच बोलता है, झूठ बोलता है, शपथ खाता है, हा हा खाता है, डरता है, डराता है, चोरी करके भी शाह बनता है, शाह बन कर भी चोर। नाना रूप, नाना वेप, और नाना लीलायें हैं उस नटवर की। स्वयं इस विश्वका आदि, मध्य और अन्त है वही। वह स्वयं जगत्के नाटकका सूत्रधार है परन्तु स्वयं इसका एक सामान्य पात्र भी बनता है। वह स्वयं में एक सफल नाटक है और नाटककार भी। सबको वह अपने संकेतों पर नचाता है और स्वयं दूसरोंके इशारों पर नाचता है। कहनेका तात्पर्य यह कि, उसकी कथा अकथनीय है। उस अवतार रूप, अचिंत्य चैतन्य श्रीकृष्णकी इन अकथनीय, अकल्पनीय लीलाओंको जिस रूपमें शब्द बद्ध किया गया है, वे स्वयं में वैज्ञानिक बन गई हैं या चिन्तकोंने उनको वैज्ञानिक बना दिया है, जिससे वे आज भी जन मन रञ्जन करती हुई निःश्रेयस्की देने वाली हैं। भारत धर्मप्राण है, अतः धर्मके प्रतीकोंके ताने वानेमें बुनकर कथाकारोंने इन लीलाओंको चिरनूतनता प्रदान कर दी है। श्रीकृष्ण लीलाओंका यही वैज्ञानिक तत्व कृष्णचरित्रको अलौकिकता प्रदान करता दिखता है। यहाँ हम कृष्ण चरित्रके कुछ प्रसंगोंके ताने वानेमें से वैज्ञानिक तत्वों की खोज करेंगे।

श्रीकृष्णकी लीलाओंमें दो प्रकारके तत्व हैं—१. ऐश्वर्य और २. माधुर्य। राम-लीलाओंमें केवल ऐश्वर्य तत्व ही पाया जाता है। श्रीकृष्णमें माधुर्य तत्वकी प्रधानता है और ऐश्वर्य माधुर्यमें ही समाहित मिलता है। इस प्रकार श्रीकृष्ण लीलाओंके तीन वर्ग किये जा सकते हैं—१. ऐश्वर्य प्रधान लीला, २. माधुर्य प्रधान लीला और ३. ऐश्वर्य माधुर्य प्रधान लीला। ऐश्वर्य प्रधान लीलाओंमें ऐश्वर्य चमत्कार और माधुर्य प्रधानमें माधुरी भरी रहती है। श्रीकृष्णको पूर्णावतार कहा गया है, अतः इनकी लीलाओंका श्रवण, गायन, मनन

और चिन्तन पूर्ण मोक्ष का दाता वताया जाता है। इन लीलाओंमें ज्ञान, विज्ञान, भक्ति, अध्यात्म, दर्शन, योग, निष्काम कर्म, आदि विविध विषयोंका समाहार मिलता है। समाजके नाना अंग अपने मनके अनुकूल इनमें रस पा जाते हैं। परन्तु भक्ति इनमें प्रधान रस है। श्रीकृष्ण चरित्रने ही श्रीरूपगोस्वामीजी जैसे चिन्तकको दास्य, सख्य, और वात्सल्य जैसे अनुपम रसोंका उद्गाता बनाया। अपनी सर्वयुगीन, सार्वजनीन और सार्वदेशिक विशेषताओं के कारण कृष्ण लीलायें भारतीय संस्कृतिका मूलाधार बनी हुई हैं।

श्रीकृष्ण जन्म प्रसंगमें विचार करने पर सर्व प्रथम भादोंकी अष्टमीकी अन्धकार मयी अन्धकारावृत रात्रि, उसकी भयावहता, कंसका कारागार, उफनती यमुना नदी, कारागारके सोते पहरुओं आदि पर ध्यान जाता है। इन सव प्राकृतिक प्रतीकोंके द्वारा जन्मलीला में तत्कालीन राजनीतिक अव्यवस्था, धार्मिक अत्याचार, असत्याचरणकी पराकाष्ठा, जनताका उत्पीड़न, सन्तोंकी दयनीय दशा आदिका वर्णन है। कंसका कारागार तत्कालीन राजनीतिक दुरवस्थाका द्योतक है। उसमें बन्द देवकी और वसुदेव क्रमशः अहिंसा सत्यके प्रतीक हैं, जिनके चारों ओर पहरेदारों के रूप में हिंसा और असत्यका कठोर अत्याचार प्रशासन कर रहा है। पावस ऋतु सामाजिक रुग्णताका प्रतीक है और तदन्तर्गत भादों की अष्टमी अष्ट वसुओंके दुःखोंकी काली रात है। अर्द्धनिशा उनके पराभवकी मध्यान्तर स्थिति है। कृष्णका प्रादुर्भाव महासत्व रूपी प्रकाश है, जिसके आते ही समस्त विरोधी तत्व क्षीण हो जाते हैं। अतः पहरेदार सो जाते हैं अर्थात् हिंसा और असत्यका पराभव हो जाता है। तालोंका स्वतः खुल जाना जैसे अत्याचारका आत्मसमर्पण हो जाता है। वसुदेव रूपी सत्य कृष्ण रूपी महासत्व प्रकाशको लेकर गोकुलकी राह लेते हैं। गोकुल क्या है इन्द्रिय समूह, जहाँ सत्य प्रकाशको सौंप देने चल दिया है। क्योंकि इन्द्रिय समूहके उद्बुद्ध होनेसे ही क्रान्ति सम्भावित है।

मार्गमें यमुनाका भयंकर रूप है जो युगके विषम प्रवाहका प्रतीक है। सामने सिंह दहाड़ता है, जो भावी आशंकाओं और आपत्तियोंका गर्जनस्वर जैसा है। वसुदेव यमुनामें प्रवेश करते हैं जैसे अन्धेरेमें प्रकाश पुञ्जको लेकर कूद पड़े हों। सिर तक यमुना जलका प्रवाह युगका घोरतम विरोध, फिर नीचा हो जाना, अत्याचारी युगकी पराजयस्वीकृतिका शंखनाद है। वसुदेव अपने लक्ष्यपर पहुँचकर ही दम लेते हैं, जहाँसे वे यशोदाकी कन्याको ले आते हैं। कन्याशक्तिका रूप है। प्रकाशको सुरक्षित करके शक्ति लाए। यही शक्ति अत्याचारके शक्तिपुञ्ज कंसका संहार करायेगी। शक्ति तत्कालीन पीड़ित समाजकी—जनता जनार्दनकी—मानसी सन्तति है, जो कारागारकी एकान्ततामें गहनगूढ़, चिन्तनका कारणभूत हैं। कंस, जो युगके दर्पका प्रबल प्रतिनिधि है, कारागारमें भी पहरेके भीतर देखता है कि, क्रान्तिका वीज अंकुर दे चुका है, तड़प उठता है और कन्याको पत्थरपर पटकता है। उसका अभिमान देख नहीं पाता कि, वसुंधराका आठवाँ वसु जन्म ले चुका है, धरतीकी कोख भरी पूरी हो चुकी है। वह उस कन्या रूपिणी क्रान्तिको भी संहारना चाहता है। परन्तु क्रान्ति कभी मरी है? जनजनके मानसमें जब अत्याचारके विरुद्ध विद्रोह फूट पड़ता है तो स्वयं

विधातामें भी उसे अस्तित्व हीन करनेकी क्षमता नहीं। कंस बेचारा तो एक मानव मात्र था। आकाशवाणी होती है। कंसका दर्पाहत स्व बोलता है—कंस तेरा काल जन्म ले चुका। कंस विवेक खो बैठता है। अभी तक दर्पाहत था, अब मस्तिष्कके सन्तुलनको भी खो बैठता है और आज्ञा देता है कि, उस बालकको तुरन्त खोजकर मार डाला जाय जिसने मेरे कालके रूपमें जन्म लिया है। इस प्रकार कंस एक और हत्याकाण्डकी लम्बी शृङ्खलाको जन्म देकर अपना अन्त समीप बुला रहा है, क्योंकि हिंसाकी पराकाष्ठा जन-संगठनको आमन्त्रण देगी, जो कृष्णरूपी प्रकाशमें पल्लवित और सफलीभूत होगा।

कृष्ण जन्मकी इस कथाका मनोवैज्ञानिक महत्त्व है। कंस एक निरंकुश शासक था। उसका शब्द ही विधान था। वह अधिनायक तन्त्रमें विश्वास करता था। कारागारकी विद्यमानता इस तथ्यको प्रामाणिक बनाती है कि, विरोधियोंको वह या तो मौतके घाट उतारता था या कारागारमें हृदय परिवर्तनकेलिए डालकर नाना कष्ट देता था। अन्य कारा-गार यात्रियोंके नाम देनेमें साहित्य असमर्थ है। केवल देवकी और वसुदेव प्रमुख वन्दियोंके रूपमें वर्णित हैं। इससे ध्वनित होता है कि, कंसकी विरोधी विचारधाराके ये दोनों प्रधान संवाहक और प्रमुख क्रान्तिकारी नेता थे। इनके वध करदेनेसे सम्भवतः कंसको देशमें सामूहिक विद्रोहका भय था। इसी कारण उसने उनका वध न कराके जेलमें डाल दिया था। कारागारमें इनको कोई सुविधा प्राप्त न थी। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है, वाहरी संसारसे इन दोनोंका सम्पर्क वरावर बना हुआ था। अपने अनुयायियोंकी सहायतासे भादोंकी अँधेरी अर्द्धनिशामें श्रीकृष्णका स्थान परिवर्तन कर देना इस संगठनकी-क्रान्तिकी पहली रिहर्सल थी, जो सफलतापूर्वक हुई। अधिनायकोंके विरुद्ध सफलता पानेके अवसर ऐसे ही असाधारण वातावरणमें मिला करते हैं। वसुदेव और देवकीको एक दीर्घ अवधि तक कारागारमें एकान्त सेवन करना पड़ा था। इस बीचमें वे नितान्त चेतना शून्य नहीं रहे। सततचिन्तन कभी-कभी दूरगामी योजनाओंको जन्म दिया करता है। यही हुआ भी। यह कारागार-वास न केवल वसुदेव देवकीको, बल्कि समूचे समाजको लाभकारी सिद्ध हुआ। मनोवैज्ञानिक चिन्तनसे वसुदेव इस निष्कर्षपर पहुँच चुके होंगे कि, ऐसेही कारागारमें पड़े-पड़े जीवन खोना बुद्धिमानी नहीं और इस पापी राजासे न्यायकी आशा नहीं। अतः उन्होंने अपनी सन्तानको स्थानान्तरित करनेमें विलम्व नहीं किया। संयोगसे वह सन्तान ही कंसके क्रूर शासनसे मुक्ति दिलानेमें समर्थ सिद्ध हुई। कृष्ण जन्म कथा केवल पौराणिक गाथा नहीं, एक ऐतिहासिक तथ्य है, जिसे हमारे त्रिकालदर्शी कथाकार ऋषियोंने प्रतीकोंकी शृंखलामें सुन्दरतापूर्वक सूत्रवद्ध करके अजरामर बना दिया है। इनमें रूपक गुंथे हुए हैं, जिनकी व्याख्याओंमें धर्म, दर्शन, अध्यात्म, इतिहास, समाजशास्त्र आदिके तथ्य और कथ्य ग्रथित हैं। इनमें भगवान्‌का ऐश्वर्य रूप सर्वत्र मिश्रित है। परन्तु लीलाओंमेंसे यदि इस चमत्कार को एक क्षणको निकाल भी दिया जाय तब भी श्रीकृष्णका महामानव, अपौरुषेय रूप अविकल रूपसे उद्‌भासित रहता है। चाहे राजनायकके रूपमें देखें, चाहे योद्धाके रूपमें, चाहे समाजसुधारक रूपमें, चाहे साधकरूपमें, चाहे संगठनकर्त्ताके रूपमें और चाहे अवतार रूपमें देखें, श्रीकृष्ण स्वयंमें पूर्ण हैं। अतः उनकी लीलायें भी, किसी रूपमें देखें, पूर्ण हैं।

"भगवान् श्रीकृष्ण ईश्वरके अवतार नहीं, स्वयं ईश्वर हैं । शास्त्रों, वेदों, और पुराणों में 'परमात्मा' की जो व्याख्या की गई है, वह श्रीकृष्णपर पूर्ण रूप से घटित होती है। शास्त्रों, वेदों, और पुराणों के परब्रह्म परमात्मा श्रीकृष्ण ही हैं।"

श्रीकृष्णकी अखंड भगवत्ता

साहित्याचार्य श्रीरघुनाथप्रसाद चतुर्वेदी

शीर्षकके अनुसार मेरे इस लेखका प्रतिपाद्य विषय भगवान् श्रीकृष्ण की अखंड भगवत्ता है । भगवान् शब्द से व्यवहृत होनेवाले व्यक्ति में समग्र ऐश्वर्य आदि गुणों का होना आवश्यक है । सर्व प्रथम हमें उनके समग्र ऐश्वर्य या सर्वशक्तिमत्ताका दर्शन उनकी बाल्य-काल और किशोरावस्थाकी अति मानुषी लीलाओं तथा चरित्रोंमें होता है, जिनमें कुछ ही मास की अत्यधिक छोटी अवस्थावाले स्तनन्धय शिशु भगवान् बाल श्रीकृष्णके द्वारा पूतना जैसी मायाविनी निशाचरीके स्तन्यपान मात्र से उसके प्राणोंका पान करलेना, ऊपर लटके हुए महाभारवान् शकट या छकड़ेका अतिलघुकाय अपने चरणके संचालन से अति दूर गिरादेना, वात्यरूपधारी तृणावर्त जैसे दुर्दान्त दानवका गल ग्रहण से निश्चेष्ट दशा में आकाश से ही शिलाके ऊपर पटककर उसके शरीर का चूर-चूर कर देना, अपने बालककी भगवत्ता या ईश्वरता से अपरिचित स्नेहमयी जननी यशोदाको मृद् भक्षण के अपराधमें मुख व्यादान के व्याजसे समस्त ब्रह्माण्डको अपने मुखमें प्रदर्शित करना, सात-आठ वर्ष की किशोर अवस्थावाले बालक द्वारा अघासुर, बकासुर, धेनुकासुर, प्रलम्बासुर आदि अनेक असुर श्रेष्ठों का मारा जाना, उलूखलबन्धन के प्रसंग में अति महाकाय यमलार्जुन जैसे वृक्षोंका गिराना, यमुना जलकी शुद्धिकेलिये कालिय सर्प का दमन, ग्वालबालों की रक्षाकेलिए दावानलका पान, एवं ग्यारह वर्षकी अवस्थामें रहस्यपूर्ण रासलीला का आयोजन, तथा कुवलयापीड़ जैसे मदोमत्त गजके दाँतों को उखाड़ उसे मारना और चाडूर मुष्टिक जैसे महा बलवान मल्लोंको पछाड़ अन्यायी तथा अत्याचारी मातुल कंसका वध करना आदि चरित्रों के देखने से सात्विक दृष्टि रखनेवाले व्यक्ति को यह भली-भाँति विदित हो जाता है कि, आपका यह कृष्ण स्वरूप वास्तवमें अपनी सर्व शक्ति मत्ता तथा सर्वैश्वर्यशालित्व आदि के रूपमें रहनेवाली अपनी भगवत्ताके प्रदर्शनार्थ ही महिमामयी इस व्रज-वसुन्धरामें अवतरित हुआ है,

अन्यथा क्या किसी भी देश, काल, और समाजके सात वर्षकी अवस्थावाले बालक द्वारा गोवर्धन जैसे गिरि का उठाया जाना संभव हो सकता है !

समग्र ऐश्वर्य की भांति ही समग्र धर्मका साक्षात्कार भी आपके चरित्र में बड़े ही स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है। "धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे" के अनुसार धर्म की स्थापनाकेलिए तो आप अवतार ही धारण करते हैं। और—"धारणाद्धर्ममिप्ताहुर्धर्मो धारयते प्रजा:" के अनुसार एक मात्र धर्म ही वह पदार्थ है, जो समस्त जगत् या प्रजा के धारण करने में समर्थ है। क्योंकि—

"यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः। स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥"

के अनुसार व्यक्ति मात्र अपने बड़ों या श्रेष्ठ व्यक्तियों द्वारा प्रभावित तथा आचरित धर्म मार्गका ही अनुसरण करता है,यदि ऐसा न किया जाय तो यह समस्त संसार ही रसातल को चला जाय, जैसा कि, वर्तमान कालकी धर्मनिरपेक्षता से बड़े ही स्पष्ट रूप में दिखलाई दे रहा है, कि, सभी व्यक्ति अपने-अपने धर्म या कर्तव्यसे अपेक्षा शून्य होते चले जा रहे हैं, न जाने इनको यह धर्मनिरपेक्षता इन्हें और कितना अधिक नीचे ले जायगी। संसार का कोई भी पदार्थ कभी भी न धर्म निरपेक्ष हुआ है, न है और न होगा, अपने अज्ञानवश यह मानव भले ही धर्म निरपेक्ष हो जाय। अग्नि का धर्म उष्णत्व उससे कभी भी अलग नहीं होता, जलका धर्म शीतलत्व औपाधिक उष्णता के निकल जाने पर पुनः अपनी शीतलताको पा लेता है। इस संसार में एक मात्र धर्म या कर्तव्य ही वह पदार्थ है, जो मनुष्यको वास्तविक 'मनुष्य' के रूप में रखता है। मानव-शरीर से धर्मके अलग होते ही—"धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः" के अनुसार निर्धर्मक मनुष्य पशु ही बन जाता है, इसीलिये तो भगवान् श्रीकृष्णने कि, कहीं यह मनुष्य निर्धर्मक बनकर कर्तव्य-शून्य हो पशु न बन जाय, की आशङ्का से गीता में अर्जुन के प्रति कहा है, कि—

यदि ह्यहं न वर्तेयं जातु कर्मण्यतन्द्रितः।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ॥
उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्यां कर्म चेदहम्।
संकरस्य च कर्ता स्यामुपहन्यामिमाः प्रजाः ॥

—अरे ! अर्जुन यदि मैं तन्द्रा शून्य होकर अपने कर्तव्य कर्म रूप धर्म का पालन न करूं, तो संसार का मनुष्य मात्र मेरे मार्ग का अनुसरण करने लगे और दुखित हो, जिससे कि, मैं उसे वर्ण संकर बनाने का कारण और उसके नाश का साधन बन जाऊं। क्योंकि संसारका मनुष्य मात्र उसी मार्गका अनुसरण करता है, जिस पर चलनेकेलिये उसके श्रेष्ठ पुरुष स्वयं अपने आचरण द्वारा उसे शिक्षा देते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण, राम आदिके प्रत्येक चरित्रको ध्यानपूर्वक देखने से यही बात ज्ञात होती है, कि, उन्होंने—"शिक्षयन् स्वयमाचरन्" की दृष्टिसे संसारके लोगोंको उनका धर्म या कर्तव्य-कर्म बतलाने केलिये ही किसीभी कर्म का आचरण किया था, जैसा कि, उनके अनेक कार्यों से स्पष्ट होता है।

"अमानित्वमदम्भित्वं" के अनुसार आप महाराज युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें मानिता या दम्भसे शून्य होकर "कृष्णःपादावनेजने" के अनुसार यज्ञमें आगन्तुक सभी पुरुषोंके चरणों के धोनेका कार्य-भार अपने ऊपर लेते हैं । महाभारतके संग्राममें आप अर्जुन का सारथि कर्म ही करते हैं। क्या ये चरित्र आपकी निरभिमानताके व्यंजक नहीं ? 'पर उपदेश कुशल बहुतेरे' या "परोपदेशे पांडित्यं सर्वेषां सुकरंनृणाम्" के अनुसार वे केवल उपदेशोंद्वारा ही जन साधारणको उसके कर्तव्य-मार्ग पर चलने या धर्म पालन की शिक्षा नहीं देते, वे तो उसका स्वयं आचरण करके ही उसे उसके मार्ग पर लाते हैं । परम दुरात्मा मायावी मातुल कंसको मारनेके अनन्तर परमादरणीय माता-पिता देवकी-वसुदेवको कंसके बन्धन से मुक्तकर उनके चरणों में वन्दना करते हुए परिस्थितिवश उनकी सेवा न कर पाने के कारण उनसे क्षमा माँगते हुये आप कहते हैं, कि—

"तन्नावकल्पयोः कंसान्नित्यमुद्विग्नचेतसोः ।
मोघमेते व्यतिक्रान्ता दिवसा वामनर्चतोः ।।
तत् क्षन्तुमर्हथस्तात मातर्नौ परतन्त्रयोः ।
अकुर्वतोर्वां शुश्रूषां क्लिष्टयोर्दुर्हृदा भृशम् ।।"

कंस से नित्य ही भयभीत रहनेके कारण परतन्त्रतावश आपकी बिना सेवा किये हमारे ये दिन व्यर्थ ही बीत गये, इसलिये हे माता तथा हे पिताजी ! आप हम दोनों भाइयोंके इस अपराध को क्षमा करने योग्य हैं । आदि-आदि सभी कर्म आपके अपने धर्म पालन के ही साक्षी हैं ।

परिस्थितिवश मथुरा तथा व्रजका परित्यागकर द्वारका चले जाने पर बहुत समय पश्चात् सूर्य ग्रहण के अवसर पर कुरुक्षेत्र में मिलनेवाले अपने रक्षक तथा पालक माता-पिता नन्द यशोदाके प्रति महान् स्नेह तथा आदर और आभारका प्रकट करना, राजसी, तामसी प्रकृतिवाले बड़े भाई बलरामको हर प्रकार से सन्तुष्ट तथा प्रसन्न रखना, गुरुवर संदीपिनी की महान् सेवा एवं उनके मृत पुत्रको जीवन प्रदान कर उनकी आज्ञाओं का पालन करना, मित्र सुदामा जैसे सरल हृदय अकिंचन भक्त को बिना मांगे असंभावित अपार सम्पत्ति देना और अपने किसी अधिक घनिष्ठ व्यक्ति की भांति उसका महान आदर करना, जिसे देख आपका अन्तःपुर भी आश्चर्य चकित हो कहने लग जाय कि—

"किमनेन कृतं पुण्यमवधूतेन भिक्षुणा ।
श्रिया हीनेन लोकेऽस्मिन् गर्हितेनाधमेन च ।।
योऽसौ त्रिलोकगुरुणा श्रीनिवासेन संभृतः ।
पर्यङ्कस्थां श्रियं हित्वा परिष्वक्तोऽग्रजो यथा ।।

श्री या धन से हीन इस लोक में निन्दित इस भिक्षुक अवधूत ने ऐसा कौन सा

बहुत बड़ा पुण्य किया है, जिसे त्रिलोक गुरु एवं लक्ष्मी के निवास स्थल इन भगवान् ने पर्यं-कस्थ श्री का परित्याग कर अपने बड़े भाई की भाँति आदर दिया है । आपके ये सभी चरित्र आपके हृदयस्थ समग्र धर्मके बड़े ही स्पष्ट उदाहरण हैं ।

पशुपालन का आदर्श उपस्थित कर आप स्वयं गोपालकृष्ण कहलाने में भी अपने हृदयमें महान् सुख एवं गर्व का अनुभव ही करते हैं । "बह्वयः सपत्न्य इव गेह पतिं लुनान्ति" के अनुसार इस संसार में जब कि एक पत्नीवाले व्यक्ति का जीवन भी महान् कष्टमय देखने में आता है, उस समय आप सोलह सहस्र एक सौ आठ पत्नियों या रानी, पट रानियों का विस्तृत परिवार रखते हुए भी महान् प्रसन्न देखे जाते हैं, और आपकी वह प्रसन्नता केवल आप तक ही सीमित नहीं है, आपकी वे सभी पत्नियां या रानी, पटरानियाँ भी परस्पर सामजंस्य रखती हुई भगवान् श्रीकृष्णको अपना पति पाकर पूर्ण प्रसन्नताके साथ अपने इस जीवन को धन्य मान संसारके किसी बड़े से बड़े पद या स्थान से निरभिलाष हो जन्म जन्मांतर में भी उन्हीं श्रीकृष्ण के चरणों के दास्य भाव की ही अभिलाषा करती हैं । और कहती हैं कि—

"न वयं साध्वि साम्राज्यं स्वाराज्यं भौज्यमप्युत ।
वैराज्यं पारमेष्ठ्य आनन्त्युं वा हरेः पदम् ।।
कामयामह एतस्य श्रीमत्पादरजः श्रियः ।
अस्य मे पादसंस्पर्शो भवेज्जन्मनि जन्मनि ।।

इस प्रकार आपके जीवनके प्रत्येक क्षेत्र के चरित्र पर दृष्टिपात करने से आपकी भगवत्ता बड़े स्पष्ट रूप से ज्ञात हो जाती है । चाहे हम आपकी भक्तवत्सलता, शरणागत कृपाकुलता, पतित पावनता, महान् राजनीतिज्ञता, आदि किसी भी चित्र को क्यों न देखें, हमें सर्वत्र आपकी सब प्रकार से पूर्णता तथा चरित्र की महानता ही दिखाई देती है । महाभारतके संग्राम में भक्त प्रवर अर्जुन की सब प्रकार से रक्षा और उसकी पूर्ण विजय का भार धारण करते हुए भी आप भक्तराज भीष्म की प्रतिज्ञा भी अवश्य पूरी करते हैं, चाहे ऐसा करने से उनकी अपनी प्रतिज्ञा भले ही अपूर्ण रहजाय, जो उनके—"स्वनिगममपहाय-मत्प्रतिज्ञामृतमधिकर्तुमवप्लुतो रथस्थः" से स्पष्ट है ।

आपके दृष्टि-साम्य का उदाहरण अपनी सहायताकेलिये आनेवाले परमभक्त अर्जुन और प्रतिकूल आचरण करनेवाले दुर्योधन, इन दोनों की इच्छानुसार संग्राम में सहायता करना है । आपकी महान् राजनीतिज्ञता आपके जीवनके उन अनेक चरित्रों में देखने को मिलती है, जिनमें कि, आपका जीवन किसी छोटे से छोटे कार्य से लेकर महान् से महान् कार्य में भी कभी असफल होता नहीं देखा गया जब कि, आज तक के बड़े से बड़े राजनीतिज्ञ तथा कूटनीतिज्ञ भी महान् से महान् भूलें करते देखे गये हैं । आपकी निस्पृहताका यह सबसे बड़ा उदाहरण है, जब कि आप अपनी दिग्विजय में राज्यों का विजय करते हुए भी उन

राज्योंका शासन अपने अधिकारमें नहीं लेते, किन्तु उन राज्योंके अधिकारी उनके पुत्र, भ्राता, पिता आदि को ही उनका शासन भार सौंपकर उन्हें प्रजा पालन रूप धर्म पालन को शिक्षा ही देते हैं। आदि राज्यके अधिकारी पांडवोंको प्रत्येक प्रकारके प्रयत्नके उपरान्तभी जव दुराग्रही दुर्योधन "सूच्यग्रं नैव दास्यामि विना युद्धेन केशव" के अनुसार पाँच गाँव मात्र भी देनेकेलिए तैयार नहीं होता तो आप बढ़ते हुए अन्याय और अत्याचारके दमनकेलिये अपने बन्धु-बान्धवोंके विनाश और उसके महान् भयानक परिणाम से भयभीत अर्जुनको गीता-शास्त्र का उपदेशकर उसे सर्वस्व विनाशक युद्धके लिये ही तैयार करते हैं, और जब तक उसके मुख से—

"नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत ।
स्थितोऽस्मि गतसंमोहः करिष्ये बचनं तव ॥

आदि वचन कहलाकर यह भली-भांति नहीं जान लेते कि, अब अर्जुन का मोह तथा अज्ञान दूर होकर उसे पूर्ण ज्ञान की उपलब्धि हो गई है और वह गत संमोह होकर निश्चित रूप से मेरे बचनोंके पालनार्थ तैयार हो गया है, तब तक आप उपनिषदों के सार अपने महान् निगूढ़ तात्विक ववनों के उपदेश की महान् सफलता को नहीं समझते। इससे स्पष्ट है कि, आपके चरित्रोंमें धार्मिकता तथा कर्त्तव्य-पालन कितने प्रचुर परिमाण में भरा हुआहै!

समग्र ऐश्वर्य और समग्र धर्म की भांति ही आपका सच्चिदानन्द विग्रह समस्त ज्ञान और वैराग्यका भी पूर्ण आश्रय है। समस्त उपनिषदों के सारभूत परम निगूढ़ तत्वको अपने भीतर रखनेवाला केवल ७०० सात सौ श्लोकों का छोटा सा यह गीता-शास्त्र आपके समग्र ज्ञान का निदर्शन है। जिस पर—"नभः पतन्त्यात्म समंपतत्रिण:" के अनुसार समस्त विश्वके महान् से महान् विद्वानों ने इसके उपदेश के समय से लेकर आज तक अपने विभिन्न महान् विचार प्रकट किये हैं, और न जाने कब तक प्रकट करते रहेंगे।

संसारी राग द्वेष से बिलकुल निर्लिप्त रहना ही वैराग्य है। भगवान् श्रीकृष्णके किसी भी चरित्र से उनका संसार के किसी भी पदार्थ से रागद्वेष नहीं सिद्ध होता। उलटे उनके चरित्र में प्रारम्भ से समाप्ति तक रागद्वेष शून्यता तथा पूर्ण वैराग्यके दर्शन ही होते हैं। बाबा नन्द तथा माता यशोदा एवं ग्वाल-बालों और गोपी गायों के साथ असीमित बढ़ा हुआ उनका वह महान् प्रेम, जिसमें कि, इन सब में से एक व्यक्ति भी परस्पर एक क्षणके लिये भी एक दूसरे के विरह को नहीं सह सकता था, धनुष यज्ञ दर्शनकेलिये अक्रूर द्वारा श्रीकृष्ण बलरामके मथुरा पहुँचा दिये जाने पर एक ही झटके में टूट गया, और वह ऐसा टूटा कि, फिर आपने अपने उस जीवन में तो कभी गोकुल, वृन्दावनकी सूरत ही नहीं देखी। राज्यों की शासन सम्बन्धिनी निस्पृहता से भी आपके पूर्ण वैराग्य की ही झलक मिलती है। रासलीला के परम रस में निमग्न होते हुए भी वहाँ से अन्तर्हित होजाना भी संसारी पदार्थों से आपके परम वैराग्य का सूचक है। "नाहं तुसख्यो भजतोऽपि जन्तून् भजाम्यमीषामनु वृत्ति वृत्तये" के द्वारा आपने अपनी यही विशेषता बड़े ही स्पष्ट रूप से बतलाई है।

आपके विग्रह में समग्र यश और श्री के दर्शन भी समग्र ऐश्वर्य और समग्र धर्म की भाँति ही प्रचुर परिमाणमें होते हैं । "श्रियो निवासः यस्योरः" के अनुसार लक्ष्मी का निवास-स्थान तो आपका अन्तर्हृदय है, जहाँ से वह कभी एक क्षणकेलिये भी विचलित नहीं होतीं, इसी लिये तो आपने अपने अन्तर्हृदयके संकल्प मात्र से अपने परम सखा, सुदामाको इतनी प्रचुर सम्पत्ति प्रदान किया कि, जिसे देख वह महान् आश्चर्य के सागर में निमग्न हो गया ।

आपके यश के सम्बन्ध में कुछ भी कहना सूर्य को दीपक दिखाना जैसा है । समस्त संसार में आज तक ऐसा कौन महापुरुष हुआ है, जिसने आप जैसी विपुल कीर्ति अर्जित की हो । इस देश के बंगाल, गुजरात, महाराष्ट्र, बिहार आदि सभी प्रदेशों के सामान्य लोगों में तो आपकी कीर्ति-गाथाने पर्याप्त प्रसार पाया ही है, देशान्तर तथा इस देश के किसी भाग के महापुरुष एवं सन्त,महन्त और बड़े से बड़े विभिन्न सम्प्रदायाचार्य भी आपके चरित्रों से पूर्ण प्रभावित हुये विना नहीं रहे । यह बात आपकी यशोगाथा में उनके मुख से निकले आपके अनेक स्तोत्रों से ज्ञात होती है । इन आचार्यों में वैष्णव धर्म के आचार्य तो आपके अपने ही हैं, किन्तु इन सब में अद्वैतवादी या मायावादी स्वयं श्रीशंकराचार्य और मधुसूदन सरस्वती जैसे भिन्न सम्प्रदाय प्रवर्तक आचार्यों और विद्वानों द्वारा भी जब इस पूर्ण भाव भरी अपनी वाणी से भगवान् श्रीकृष्ण के गुणानुवादों को गाया जाता है, और वे कहते हैं— कि, "कृष्णात्परं किमपि तत्वमहं न जाने" और चेतो मदीयमतसी कुसुमावभासं स्मेराननं स्मरति गोप वधू किशोरम्" तो निर्भ्रान्ति रूप से यही ज्ञात होता है, कि वास्तव में एक मात्र भगवान् श्रीकृष्ण का स्वरूप ही एक ऐसा आदर्श और सब प्रकार की महानताओं से पूर्ण अवतार हुआ है, जिसने अपनी भगवत्ता से समस्त देश, समाज और धर्म के लोगों को आकर्षित किया है, और मानव मात्र को उनकी वास्तविकता ज्ञात होने पर आकर्षित करने की सामर्थ्य रखता है ।

मंगल-मनोरथ

हे देव ! प्रियतम ! एक मात्र जगद्बन्धो ! श्रीकृष्ण ! चपल ! करुणा के अनुपम सागर ! नाथ ! प्राणाराम ! नयनाभिराम ! श्याम ! आप हमारे नेत्रगोचर कब होंगे ।

हे देव ! आपके सिवा मुझे प्रेम-दान करने वाला, मेरे मनोरथ पूर्ण करने वाला, मेरा अनुभव, ऐश्वर्य, जीवन, प्राणाधार और अन्य देवता कोई नहीं है ।

उपनिषदों के बीहड़ जंगलों में घूमते-घूमते नितान्त श्रान्त हुए लोगों ! मेरे इस सर्व श्रेष्ठ उपदेश को आदर पूर्वक सुनो ।

तुम्हें उपनिषदों के सार तत्व-वेदान्त प्रतिपाद्य ब्रह्मकी यदि खोज हो तो उसे ब्रजांगनाओंके घरों में ऊखल से बँधा हुआ देख लो ।

—बिल्वमंगल

परमतत्त्वरूप श्रीकृष्ण भगवान्‌पर एक दृष्टि

"भगवान् श्रीकृष्ण परमब्रह्म परमात्मा हैं, फिर भी वे प्राणवल्लभ हैं, प्रियतम हैं, सखा हैं, मित्र हैं, स्वामी हैं, हितैषी हैं, भ्राता हैं, गुरु हैं, और हैं उद्धारक। वे सबके सब कुछ हैं। उनका पूर्णत्व इसी 'सब कुछ' के ही कारण है।"

शाश्वत, सुहृद् श्रीकृष्ण

श्रीफणीन्द्रनाथ मुखोपाध्याय

प्रत्येक वर्ष की भाद्रवदि अष्टमी तिथि हिन्दू जगत्‌में यह वार्ता प्रचारित करती हैकि, 'कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्'—श्रीकृष्ण साक्षात् भगवान् हैं।

भारतीय धर्म और संस्कृतिके अन्यतम प्रवीण वाहन रवीन्द्रनाथने अपनी साहित्यिक रचना विशेषके स्थान विशेषपर लिखा है कि, भगवान् असीम हैं, अनन्त हैं सही, किन्तु वे लीला प्रदर्शनार्थं ससीम होते हैं, देह धारण करते हैं, वाक्‌मुखर होते हैं,—'सीमार माझे असीम तुमि बजाओ आपन स्वर'। कविकी इस उक्तिमें अलीक कल्पना विलास नहीं है, यह श्रीभगवान् की वाणी विशेष की प्रतिध्वनि है—

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा
भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय
संभवाम्यात्ममायया।

भगवान् कहते हैं कि, मैं अविनाशीस्वरूप, अजन्मा और समस्त भूत प्राणियों का ईश्वर हूँ सही, किन्तु अपनी प्रकृतिको आधीन करके योगमाया से प्रकट होता हूँ।

परम पुरुष परमेश्वर श्रीकृष्ण रहस्यमय सत्ता हैं। उनकी लीला का अभिप्राय महर्षि कृष्णद्वैपायनने जिस नैपुण्य के साथ भाषा से रूपायित किया है, वह एक अनिःशेष एवं चिरन्तन जिज्ञासा की विषयवस्तु है।

महाभारतके केन्द्रस्थ श्रीकृष्णके द्विविध रूपों का परिचय मिलता है—एक प्रेमका,

न्य कर्मका, एक वृन्दावनका, अन्य कुरुक्षेत्रका—महाभारतका, एक भागवतका, अन्य गीताका ।

इन द्विविध रूपोंमेंसे वरणीय और वर्जनीयका निर्णय करना अतिशय कठिन विषय है । हमारे हिन्दू मतमें वे दोनों मूर्तियाँ ही परिपूरक रूपसे रही हैं । प्रेमके रूप से और शांत दास्यादि कितने विभिन्न भावोंसे, हिन्दू जगत्के आबाल वृद्ध वनिताएँ श्रीकृष्ण के विभिन्न रूपोंमेंसे किसी एक के सहारे उनके प्रति रसका आस्वादनकर तृप्त होना चाहती हैं । कितने धर्मशील शिशु संतान जैसी, फिर कितने सखा जैसे, और कितने प्रेमी हृदय-देवताके रूपमें उनकी आराधना करते हैं । श्रीमद्भागवत श्रीकृष्णकी लीलाके स्मरण-मननका आधार है ।

पाश्चात्य भूभागके कुछ विद्वान् और उनके द्वारा प्रभावित हमारे देशके कुछ गवेषक इस तथ्यके उद्भावक हैं कि, पौराणिक एवं ऐतिहासिक श्रीकृष्ण में अन्तर है । उनका तथ्य भ्रान्तिमूलक है । क्योंकि श्रीकृष्ण जैसे दिव्य मानव वा व्यक्तिको अलग करने से भारतके इतिहास , धर्म, साहित्य, काव्य की रचना—श्रृंखलाको खोजना असम्भव है । सुतरां निः-सन्देह कहा जा सकता है कि, श्रीकृष्ण ही भारतात्मा हैं ।

श्रुतिने जिनको—'अवाङमनसोगोचरम्' कहा है, वे ही तो चक्षुकर्णोंसे गोचर होकर भारतभूमिमें विचरण किये थे, तभी तो भारत 'महाभारत' में परिणत हुआ है । पुराणकार ने तो अपने चक्षुओंसे देखकर लिखा है कि, वेदारण्यमें वे ही 'वेदान्तसिद्धान्तो नृत्यति', श्री-कृष्णही वेदान्त-सिद्धान्त, परब्रह्म हैं । वे श्रीकृष्ण गीता में कहते हैं कि, 'वेदान्तकृद् वेदाविदेव चाहम',—श्रीरामकृष्णदेवकी वाणीमें इस दुरूह तत्व का समाधान मिलता है—'वेदने जिनको 'सच्चिदानन्द ब्रह्म' कहा है, पुराणने उन्हें ही सच्चिदानन्द कृष्ण कहा है । प्रथम तो ज्ञान का भाव है, और द्वितीय प्रेमकी मूर्ति है—सर्वभावसमन्वयका विग्रह ।

शास्त्रज्ञ मनीषियों का सिद्धान्त है कि, वेदान्त श्रुतिसिर है और गीता महाभारतका मुकुटमणि है । वेदान्त वा उपनिषदों में वेदके सार तत्व हैं, उपनिषदोंके सार तत्व गीतामें निनादित होकर हैं । ज्ञान एवं प्रज्ञान-निलय,प्राचीन ऋषियोंकी अनुभूति श्रीभगवान्के अमृतमय श्रीमुखसे पुनरुद्घोपित होनेके कारण द्विगुणित बलसे बलवती हुईहै । सुतरां गीता मान्यहै -सर्व-काल तथा विश्वके समस्त देशोंमें । गीतामें मनुष्य जीवनकी सभी समस्याएँ तथा उनके समन्वय केलिये मार्गका निर्देश है । अर्जुन तो वहाँ प्रतीक स्वरूप है—विश्व मानव के प्रतिनिधि जैसा, संसार की आशा-आकांक्षा, भूल-भ्रान्ति से व्याकुल एक मनुष्यके रूपमें, मानवमनके समस्त संशय, सभी समस्यायोंको लेकर आदर्श गुरुके सम्मुख उपस्थित हैं । श्रीकृष्ण सम्पद्के समय अर्जुनके सखा, विपद्के समय युद्ध क्षेत्रमें सारथि, संशयको मिटानेकेलिए ज्ञानदाता गुरु हैं—अर्जुनके माध्यमसे श्रीभगवान् समग्र जगत् को शिक्षा दे रहे हैं ।

गीताकी शिक्षाही हमें भागवत-जीवनके लाभकेलिए समर्थ करेगी । गीताका कर्म-
योग हमें प्रस्तुत करेगा प्रेमयोग के प्रकृत रहस्यको समझनेकेलिये, निष्काम प्रेमतत्व की उप-
लब्धिकेलिए । प्रथमतः निष्काम कर्मका अनुष्ठान अपरिहार्य है । श्रीकृष्ण इन दो तत्वोंके पूर्ण-
रूप हैं । वृन्दावन उनके निष्काम कर्मोंका शिक्षा क्षेत्र है । प्रेम तथा कर्ममें अनासक्तिही
जीवनकी समस्याओंके समाधान जन्य केवल श्रेष्ठ ही नहीं, परन्तु एकमात्र साधन है । हमारी
आसक्ति ही बारम्बार संसार चक्र में हमारे बन्धन का कारण है । अनासक्ति जीव को दुःख
मुक्त करती है, शाश्वत सुख-शान्ति प्राप्तिमें समर्थ करती है । आसक्ति मनुष्यको स्वार्थपरक
करती है । कर्माश्रित आसक्ति हमें कर्मफल प्राप्तिकी ओर आकृष्ट करती है । फलकी प्राप्ति
क्षणिक सुखकी जनयित्री है, अप्राप्ति अनन्त दुःख की जनयित्री है । अनासक्त कर्मयोगी सम-
दर्शी होते हैं—वे विश्वकर्मा, ईश्वरधर्मी हैं । अनासक्त प्रेमी में न चाह और न प्राप्तिकी
अभिलाषा रहती है । अनासक्ति एक बन्धन रहित प्रेम है । इसका दूसरा नाम है—'आनन्द
ब्रह्म' । इस अनासक्तिकी शिक्षा ही मानवमनके बन्धनभाव, जीवनके निरानन्दभावको विदू-
रित करती है । यही हमारे विभिन्न शास्त्रग्रन्थोंकी शिक्षा है । श्रीकृष्ण इसी शिक्षाकी
जीवन्त मूर्ति हैं ।

विविध भावोंके सहारे साधक परतत्व, परमेश्वरकी उपलब्धिकी प्रचेष्ठा करते हैं ।
उनके ब्रह्म, परमात्मा, भगवान्—ये त्रिविध भाव विशेष प्रचलित हैं । ज्ञानमार्गमें वा ज्ञानी
के पास वे परब्रह्म, योगीके पास परमात्मा एवं भक्तके भगवान्‌के रूप से प्रतिभात होते हैं ।
भागवत कहते हैं कि, 'एते चांशकलाः पूंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्'—अन्यान्य
देवता अंशस्वरूप हैं, परन्तु श्रीकृष्ण पूर्णब्रह्म भगवान् हैं । भगवान् लीला प्रदर्शनार्थ अपने
को व्यक्त कर साकार रूप धारण करते हैं । वे अव्यक्तरूपसे अवतारी एवं व्यक्तरूपसे अवतार
हैं । इसीलिए वे निर्गुण होने पर भी सगुण होते हैं । निराकार होते हुए भी साकार होते
हैं । व्यक्त तथा अव्यक्त, उभय रूपों से वे पूर्ण हैं—''पूर्णस्य पूर्ण मादाय पूर्णमेवावशिष्यते' ।

श्रीशुकदेवजी ने महाराज परीक्षित से कहा था—

कृष्णमेनमवेहि त्वामात्मानमखिलात्मनाम् ।
जगद्धिताय सोऽत्र देही भावाति मायया ॥

—हे राजन् ! श्रीकृष्णही इस चराचर विश्वके आत्मस्वरूप हैं, वे जगत् के कल्याण
के निमित्त अपनी मायाको आधीन कर देहधारण पूर्वक पृथ्वी पर अवतीर्ण होते हैं ।' वस्तुतः
भगवत् स्वरूप, अति सूक्ष्म आद्यन्तरहित हैं, जीवके ध्यानयोगसे उपलब्धिकी वस्तु हैं,
साधारण इन्द्रियग्राह्य नहीं हैं । साधारण जीव तो ध्यान वा ज्ञान-मार्गके अनुसरणसे उतने
उच्च स्तर पर नहीं पहुंच सकते हैं, इसीलिए वे साधारणके पास अलभ्य और अनधिगम्य
रह जाते हैं । अतः भगवान् कृपापूर्वक अपने को अवतारके माध्यमसे साधारणके पास
प्रकटित करते हैं । उनकी लीलाके अनुधावनसे जीवलोक संसार-पाशसे मुक्त हो जाता है ।

इसीलिए भगवान् लीलामय एवं अपनी लीलाके उद्देशार्थ द्विविध हैं। प्रथम—अपनी लीलाके माध्यमसे वे अपनेको प्रकटित करते हैं, सभीके लिए सहज-लभ्य होते हैं। द्वितीय—लीला की प्रवणताकेलिए दुष्कृतोंका विनाश होता है, साधुजनोंका परित्राण होता है। श्रीभगवान् की लीलामें अपरिमेय माधुर्य है। इसीलिए साधारण व्यक्तिकी बात ही क्या है, ब्रह्मनिष्ठ एवं सर्वबन्धनमुक्त महाजन भी उनके लीलागुणसे आकृष्ट हो जाते हैं। प्रतिभाके वर-पुत्र कवीन्द्र रवीन्द्रनाथने जिस अमिय भाषा में सर्वनियन्ता सर्वेश्वरके श्रीचरण कमलोंमें अपने अन्तर की प्रार्थना निवेदित की थी, वह प्रणिधानयोग्य है—

तुमि यदि वक्षो माझे थाक निरवधि
तोमार आनन्दमूर्ति नित्य हेरे यदि
ए मुग्ध नयन मोर पराणवल्लभ,
तोमार कोमल कान्त चरण-पल्लव
चिरस्पर्स रेखे देय जीवन-तरीरे
कोन भय नाहि करि बाँचिते मरिते।

इस सूक्तिका विशद मर्म देवर्षि नारदकी प्रार्थनाविशेष में है—

दृष्टं तवाङ्घ्रि जनतापवर्ग
ब्रह्मादिभिर्हृदि विचिन्त्यमगाधबोधैः।
संसारकूपपतितोत्तरणावलम्बं
ध्यायंश्चराम्यनुगृहाण यथा स्मृति स्यात्॥

—जो जीवोंके मुक्ति-प्रद हैं, अगाधज्ञानी ब्रह्मादि देवगण जिनका हृदयमें ध्यान करते हैं, जो संसारकूपमें पतित जीवोंके उद्धारके अवलम्बन हैं, मैंने उनका दर्शन करलिया है, तथापि आपमें मेरी स्मृति सर्वदा अविछिन्न हो, आप इस प्रकार अनुग्रह करें। मैं आपके उन चरणकमलोंका निरन्तर ध्यान करता हुआ सर्वदा विचरण करता रहूँगा।

'सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति'

यह श्रीभगवान् श्रीकृष्णके श्रीमुख-उच्चरित मधुक्षरा अभियवाणी है—जीव के लिए सर्व दुःखहारिणी, एवं परमा शान्तिप्रदायिनी। इस अभिनव वाणीको उन्होंने विश्वमानवके कल्याण के लिए श्रीगीताके माध्यमसे प्रचारित किया है—'मैं समस्त भूत-प्राणियोंका सुहृद हूँ, इस तत्वकी उपलब्धिसे जीव मात्र शान्ति लाभ करेंगे।" यह एक अपूर्व अनवद्य आश्वास्त वाणी है। इसका विश्लेषण करने से स्वतः अनुभव होगा कि, श्रीभगवान् सर्वजीवोंके यथार्थ शाश्वत सुहृद हैं, सभीके महोपकारक बन्धु हैं, एक मात्र शान्तिदाता एवं भवाब्धि पार जाने के लिए सहायक हैं।

सुहृद अर्थात् सु-शोभन, हृत्-हृदय जिनका है दुःखकातर परम, प्रिय बन्धु जो हैं। यह भक्त तथा भगवान् में नाता जोड़नेकी बात है। जैसा भक्तकेलिए भगवान् ही एकान्त

प्रिय वस्तु हैं, वैसा ही भगवान् के लिए भक्त ही एकान्त प्रिय वस्तु है । भगवान्का हृदय भक्त के लिए सतत् उन्मुख रहता है । सदा उन्मुख, निश्चिन्त आश्रय भगवान् के अतिरिक्त और कुछ नहीं है । परमाशान्तिका आधार श्रीभगवान् अन्तर्यामीस्वरूप हमारे हृदयमें निरन्तर रहते हैं—'ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति' । वे हमारे मध्य सतत् विराजित हैं एवं जीवोंकेलिए उनका हृदय सदाही कृपा एवं प्रेम से पूर्ण है ।

गीता उपनिषदका सार है । गीताके प्रत्येक अध्यायही योग हैं, गीताकी मुख्य वाणी 'योग' है—'हे अर्जुन ! तू योगी बनो ।' यह योग समस्त योगों का समन्वय है—ज्ञानयोग, कर्मयोग, भक्तियोगका समन्वय । इसका प्रकृत उद्देश्य परमात्माके साथ युक्त होना है, आत्मकेन्द्रिक जीवनको श्रीकृष्णकेंद्रिक जीवनमें परिणत करना है । मानव जीवनको भागवत-जीवनमें परिणत करनेकी चेष्टाही साधना है । साधनाके स्तरोंमें त्याग ही प्रधानहै-

श्रेयोहि ज्ञानमभ्यासा
ज्ज्ञानाद्ध्यानं विशिष्यते ।
ध्यानात्कर्मफलत्याग
स्त्यागाच्छान्तिरनन्तरम् ।

—भगवान् कहते हैं कि अभ्याससे परोक्षज्ञान श्रेष्ठहै,परोक्षज्ञानसे मुझ परमेश्वरके स्वरूप का ध्यान श्रेष्ठ है, ध्यानसे भी सब कर्मोंके फलका मेरे लिए त्याग करना श्रेष्ठ है और त्याग से तत्काल ही परम शान्ति होती है ।

फिर भी कहा गया है कि—

यच्च काम सुखं लोके
यच्च दिव्यं महासुखम् ।
तृष्णाक्षयसुखस्यैते
नार्हतः षोडशीं कलाम् ॥

—कामना की पूर्ति से जो सुख होता है, देवलोक में अयत्न साधित जो स्वर्गसुख मिलता है, वह सुख उस सुख के सामने नहीं ठहरता, जो मनुष्य को अपनी तृष्णाको छोड़ने से मिलता है

इससे सुस्पष्ट होता है कि, हमारे सभी दुःखोंका कारण वासना है । वासना वा कामना-त्याग-समर्थ मानव त्रिताप से मुक्त हो जाते हैं । निम्नांकित भगवत्वाणी त्रिताप नाशक रसायन है—

तमेव शरणं गच्छ
सर्वभावेन भारत ।

तत् प्रसादात्परां शान्तिं
स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम् ॥

वैष्णवशास्त्र सम्मत, चरम एवं परम निर्देश है—शरणागति, प्रपन्न आत्मनिवेदन—यह दुःख दाहका स्निग्ध प्रलेपन है। आत्मनिवेदन वा कैङ्कर्य भारतीय वैष्णवोंकी परमश्रेष्ठ बात है—"मैं इस जगत् में एकान्त अशरण हूँ, अगाध-अपार भवसागरमें निमग्नप्राय हूँ।

हे कर्णधार, आप मेरा उद्धार करें।"

निष्किञ्चनके आत्मत्राणकी प्रार्थना उनके कर्णोंमें प्रवेशित होते ही वे स्थिर न रहेंगे, स्वयं भक्तका समस्त विपदों से त्राण करेंगे ही—

प्रपन्नपारिजाताय
तोत्रवेत्रैकपाणये।
ज्ञानमुद्राय कृष्णाय
गीतामृतदुहे नमः ॥

शरणागतके कल्पवृक्षतुल्य, अश्वचालनकेलिए एक हस्त से चावुक और लगाम धारी, गीतामृतदोहनकारी तथा ज्ञानमुद्रायुक्त भगवान् श्रीकृष्णको हम वारम्बार प्रणाम करते हैं।

मुकुन्द मुक्तावलि

जिनका वर्ण नवीन जलधर के समान है, जिनके कानों में चम्पा के फूल सुशोभित हैं, खिले हुए पद्म के समान जिनका मुख है, जिस पर मन्द-हास्य सदा खेलता रहता है, जिनके वस्त्र की कान्ति स्वर्ण के समान है, जो मस्तक पर मोर मुकुट धारण किये रहते हैं, उन सब के साररूप श्री यशोदाकुमार का मैं स्तवन करता हूँ।

जिनके मुख की अनुपम शोभा शरदृतु के पूर्ण चन्द्रमा का पराभव करती है, जो कीड़ा रस एवं लावण्य के समुद्र हैं, जो हाथ में कन्दुक लिये रहते हैं, तथा गोपियों के प्राण बन्धु हैं, जिनका मंगल विग्रह गोधूलि से धूसरित रहता है, जो बगल में बंशी लिए रहते हैं, और गौयें जिनकी वाणी के वशीभूत रहती हैं, वे नन्द नन्दन मेरी रक्षा करें।

जो अपने वक्षः स्थल पर नक्षत्र मण्डली के समान मोतियों का बहुमूल्य एवं श्रेष्ठ हार धारण किये रहते हैं, जो गोपांगनाओं के चित्त में प्रेमका संचार करते रहते हैं, दुष्ट मण्डली का शिरोभूषण रूप कंस जिनके क्रोध का शिकार बन गया, और जिनकी बंशी पर विशेष प्रीति है, वे श्रीकृष्ण हमें अपने दुर्लभ प्रेम का दान करें।

—श्रीमद्रूपगोस्वामी

श्रीकृष्ण भगवान्—जटिल समस्याओंके समाधान,
जीवनके निगूढ़तम प्रश्नोंके उत्तर

"मनुष्यके जीवनमें क्षण-क्षणपर कुरुक्षेत्रकी रचना होती है। क्षण-क्षणपर अर्जुन मनमें उत्पन्न होता है और उत्पन्न होता है प्रश्नोंका घटाटोप, व्यामोह, तर्क-वितर्क, संशयात्मकता, निष्क्रियता। मनुष्यके संपूर्ण जटिल ऊहापोहोंका समाधान श्रीकृष्ण चरित्र और वाणीमें ही प्राप्त होता है।"

कृष्णंवन्दे जगद्गुरुम्

श्रीगोविन्द शास्त्री एम० ए०

दोनों सेनायें एक दूसरेके सामने युद्ध करनेके लिए सन्नद्ध खड़ी हैं। बीचमें अर्जुनका रथ खड़ा है। रथ औरोंकी दृष्टिमें प्रश्नके रूपमें खड़ा है और रथमें जीवन्त प्रश्न बैठा है अर्जुन, द्रोणका प्रिय शिष्य, कृष्णका एकनिष्ठ भक्त, और पाण्डव दलका अप्रतिम योद्धा। किस असमयमें उसे व्यामोहने घेरा है। अभी रणभेरी बजाकर युद्ध कौशल दिखानेका अवसर है या प्रश्नोंके अम्बारमें ढँक जानेका। प्रश्न—प्रश्न और प्रश्न। कृष्णके प्रत्येक उत्तर में पार्थको प्रश्न दीख जाता है और वह इतना उद्विग्न हो जाता है कि, स्वयं अपने आराध्य पर आक्षेप कर उठता है, उसके 'बुद्धिमोहयसीवमें' में यही आक्षेप उभर रहा है और कृष्ण उस आक्षेपकी उपेक्षा कर जाते हैं इसलिए नहीं कि, अर्जुनके विना यह युद्ध पूर्ण नहीं होगा, इसलिए भी नहीं कि, अर्जुन उनकी एकनिष्ठताके प्रति शंकित हो रहा है, वरन् इसलिए कि, इस अर्जुनके माध्यमसे वे युगोंमें उत्पन्न होनेवाले मतिभ्रमको एक सुनिश्चित और सुस्पष्ट दिशा-दृष्टि दे सकें अन्यथा सव्यसाचीकी क्या हिम्मत कि, वह पार्थसारथिकी आज्ञामें ननु-नच कर सके। परिणाम यह होता है कि, इधर कृष्ण मन्दस्मित करते जाते हैं और उधर गाण्डीवधारी गाण्डीवको एक तरफ रखकर प्रश्नोंमें उलझता जा रहा है। कृष्णके यह कहने पर कि, जीतकर साम्राज्यका और मरकर स्वर्गका उपभोग करेगा, अर्जुन तिलमिला उठता है। वह दो बात पसन्द नहीं करता, वह तो श्रेयार्थी है और उपभोग, चाहे वह राज्य सम्पदाका हो या स्वर्ग सुखका, प्रेय ही है, इसलिए फिर वह मुखर होकर पूछ बैठता है, 'तदेकं वद निश्चित्य येन श्रेयोऽहमाप्नुयाम्' इस प्रश्नमें उसकी श्रेयप्राप्ति की बलवती आकांक्षा गूँज रही है। प्रत्येक समाधानके प्रश्न चिह्न लगाकर वह अपनी किंकर्त्तव्यविमूढ़ताको कृष्ण पर थोप देता है। अन्ततः कृष्ण उस रहस्यका उद्घाटन करते हैं, पर वेचारे अर्जुनके पास उस रहस्यको देखनेके लिए दृष्टि भी तो नहीं है।

कृष्णके समझानेसे जब समझ नहीं पड़ रहा है तो विवश होकर उस वैभवशाली रूपका दर्शन कराना पड़ता है और उस दर्शनकेलिए दिव्य दृष्टि भी वे ही देते हैं। कृष्णके इस रूपको देखकर 'भिद्यते हृदय ग्रन्थि श्छिदयन्ते सर्व संशयाः' कहनेको विवश हो जाता है वह प्रबुद्ध प्रश्नधर। और ऐसे विषम समयमें संसारको, युगोंको तथा मानव जातिको एक सनातन सत्यका वरदान मिलता है, विश्व वाङ्मयको अनुपम कृति मिलती है।

वास्तवमें आजके कार्यक्षेत्रमें भी प्रत्येक अर्जुन अपने आपसे प्रश्न करता है, हर मार्ग उसके सामने चौराहा बनकर खड़ा हो जाता है और वह दिङ्मूढ़ होकर प्रेय-श्रेयके भीषण आवर्तमें फँस जाता है। उसका स्वयंका जीवन उसे एक रिक्त प्रश्नके समान लगता है और जीवनका गंतव्य सार हीन दिखता है। गर्भसे श्मशान तककी यात्राको वह यात्राके रूपमें ग्रहण करे या उससे कोई भौतिकेतर उपलब्धि प्राप्त करे? ऐसी स्थिति होते ही उसको कर्तव्यके प्रति अनास्था हो जाती है, जीवनके मूल्योंके प्रति वह सशंक हो उठता है और उसका गाण्डीव भी हाथसे गिरने लगता है। वह इन प्रश्नोंका उत्तर किससे प्राप्त करे, किस विराट्के दर्शन कर वह एक सुनिश्चित उत्तर प्राप्त करे? यह एक यथार्थ स्थिति है, किन्तु इस स्थितिका उत्तर पक्ष भी है और वह है कृष्णको पुकारनेका। सच्चे हृदयसे जिस क्षण व्यक्तिका अन्तर्मन क्रन्दन करता है, उसी समय अकारण कारुणिक प्रकट हो जाते हैं। व्यक्ति चाहे तो अर्जुन बनकर गीताको पढ़ले या उन करुणा वरुणालयको पुकार ले, वे दोनों ही रूपोंमें आनेको आतुर हैं। वे तो स्वयं कहते हैंकि, सब धर्मोंको छोड़कर मेरी शरणमें आ जा। है कोई इस तरह स्पष्ट शब्दोंमें बुलानेवाला?

दिग्भ्रम होता है परोक्ष जीवीको और जो अतीतसे बँधे हुए हैं, अथवा अनागतमें आसक्त हैं, वे दोनों ही संदिग्ध हैं, दोनों ही परोक्ष जीवी हैं। गीताका निष्काम कर्मयोग उस आसक्तिके भ्रमका अनावरण करता है, वह व्यक्तिको वर्तमानकी प्रतिष्ठा करनेकी प्रेरणा देता है। गीताका अनासक्ति योग शुद्ध बुद्धिवाले व्यक्तियोंकेलिए तो संजीवनीका स्वरूप है। कार्य करो और फलको किसी और के समर्पित करदो अर्थात् जो तुम्हारा अधिकार है, वहीं तक सोचो, अनागतमें, भविष्यके गर्भमें छुपे फलकेलिए आतुर मत हो। कितना सरल और व्यावहारिक प्रतिपाद्य है गीताका। वस्तुतः गीता और सप्तशती दो ही पारमार्थिक और श्रेयस्कारी ग्रन्थ हैं, दोनोंका एकही प्रतिपाद्य है। समाधिसुरथ और अर्जुन, दोनों ही एकसे मोहसे ग्रस्त हैं। दोनों परोक्ष जीवी हैं। जिस तरह समाधिसुरथ अतीतसे बँध रहे हैं, उसी तरह अर्जुन अनागतसे बँध रहे हैं और दोनों विराट् रूपको देखकर ही शान्त होते हैं। समाधि सुरथको शक्तिके विराट् रूपका दर्शन होता है। सारे देवताओंमें शक्तिके प्रतीकोंसे पराशक्तिका रूप निर्माण होता है और फिर वह नाना रूपोंमें विभक्त शक्ति एक रूपमें समाविष्ट होजाती है। शक्ति प्रतीकोंके रूपमें भिन्न है। पर शक्तिके रूपमें अविच्छिन्न-एक रूप है और ये ही रूप कृष्णके विराट् रूपमें प्रतिबिम्बित होता है। शक्ति स्वयं अपने समर्थ रूपको बड़ा प्रबल और आकर्षक बनाती हुई कहती है—

ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती ही सा ।
बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति ॥

तो कृष्ण कहते हैं—

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया ।

दूसरा साम्य इन दोनों ग्रन्थोंमें दिखाई देता है उस समय, जब रणकी भीषणतामें कृष्ण निर्द्वन्द्व होकर मुस्कुराते रहते हैं तो दैत्य वाहिनीके गर्जन-तर्जनसे अप्रभावित वह देवी एक मधुका प्याला निर्द्वन्द्व होकर पीती है । इन दोनों स्थलोंपर शक्ति और शक्तिमन्त, माया और कृष्ण, मधु और मधुर, दोनों एक दूसरेमें अनुस्यूतसे एक रूपसे दिखते हैं । कृष्ण अपने और अर्जुनके बहुत जन्मोंका विश्वास दिलातेहुए कर्मकी प्रेरणा देते हैं और यही है वह रहस्य, जो आजके अर्जुनकेलिए जीवन बूटी है ।

जीवन क्या है ? कहाँसे आया है ? जौर कहाँ जायगा ? इन प्रश्नोंसे कुछ भी हाथ नहीं लगनेका । जो वर्तमान है, उसकी पूजा करो । जो कर्म है, उसे समझो,अकर्म और विकर्म की विभिषिकासे दूर रहकर प्राणवान् बनो-यही उद्देश्य है कृष्णका । कृष्णका नाम अपने आपमें सम्पूर्णतः सार्थक है । यों तो कृष्ण शब्द कृष्णके जन्मसे पहले भी प्रचलित था, किन्तु उसे सजीव-सार्थक करनेवाले कृष्ण ही थे और उन्हींके अवतारके बाद कृष्णके नाम स्मरणसे समाजका कल्याण और व्यक्तिकी मुक्ति होने लगी । वैसे कृष्ण शब्दका अर्थ होता है काला और कृष्ण भी रंगसे काले ही थे, पर सलोने, मोहक और आकर्षक । काले रंगकी विशेषता होती है कि, इसमें सारे रंग समा जाते हैं,उसपर कोई दूसरा रंग नहीं चढ़ता । यही विशेषता साकार रूपमें कृष्णके जीवनमें चरितार्थ होती है । सब उसके बल वैभवमें समा गये, कोई उसका अतिक्रमण नहीं कर सका। वैसे रंग रूपमें तो राम भी कृष्णवर्ण ही थे, पर उनको कृष्ण नहीं कहा गया, क्योंकि राम तो समाजमें रमनेवाले थे । समाजके प्रत्येक घटकके लिए रामने अपना व्यक्तित्व समर्पित कर दिया था और इस विनियोगके फलित रूपमें एक नये रामका उदय हुआ था, सर्वव्यापी रामका, सर्वप्रिय रामका, किन्तु कृष्ण तो इससे सर्वथा विपरीत थे । उनका व्यक्तित्व सर्वोपरि रहा । राम सबमें समाये थे और कृष्णमें सबको समाना पड़ा था । रामका जीवन कष्टों और पीड़ाओंका इतिहास था, कृष्णका चरित्र वैभव और सर्वातिशायी प्रभावका प्रतीक । यही एक कारण है कि, रामको कवियोंने सर्व सह, दुःखकातर और अश्रुभरित नयनोंवाला देखा है, अपनी पीड़ाको चुपचाप सहकर अपने को कर्त्तव्यनिष्ठापर होमनेवाला बताया है, पर ये भौतिक प्रतिक्रियायें कृष्णके पास तो फटक भी नहीं सकीं । जहाँ भी कृष्णको देखा, वहीं मुस्कुरातेहुए देखा । सही अर्थोंमें कृष्णका जीवन आनन्दकी उच्छल मन्दाकिनी है । वे सर्व सुन्दर हैं, विषाद और मलीनता उनके चरित्रमें कहीं है ही नहीं । उन्होंने अनेक पत्नीत्वको भी स्वीकारा तो सारे समाजने उनके इस कर्मको अलौकिक माना, रणसे भगकर भी गए तो रणछोड़के नामसे पूजे गये । सही अर्थोंमें समाज उनके पीछे था । कृष्णका जैसा वर्ण है, वैसी ही उनकी वाणी है । रससिक्त,

ओजस्वी और गुरु गंभीर वाणीमें उनका वही महामहिम आकाशतत्व व्यक्त होता है। विकत्थनसे उनको घृणा है, अभिमानके वे शत्रु हैं, व्यर्थके बकवाससे उनको अरुचि है। उनके वचनोंमें शब्दाडम्बर नहीं है, प्रत्युत शब्द भावोंका भार वहन करनेमें असमर्थसे लगते हैं। वे जो भी कुछ कहते हैं, उसको थोड़े शब्द ही वहन करते हैं, पर जो कहते हैं वह अनुपम, मर्मस्पर्शी और सत्यका व्यक्तीकरण होता है। इस अर्थमें वे सच्चे कलाकार हैं। अपने वाग्जाल सें समाजको आवृत कर देना उनका अभीष्ट नहीं है। वे तो जो हैं, और जो होगा, उसके दर्शन कराकर सेतुबन्धका कार्य करते हैं। उनकेलिए स्थितियाँ परिस्थिति बनकर नहीं आती हैं, बल्कि स्थितियोंको परिस्थितिके रूपमें उनके अनुकूल ढलना पड़ता है। वे उन विघ्नों और विषमताओंके सिरपर उसी तरह नर्तन करते हैं, जिस तरह कालियदमनके समय किया था। जिस भी अप्रियने सिर उठाया, उसीको कुचलनेमें उनके चरण बड़े कुशल हैं। जितनी तीव्रता और क्षिप्रतासे आततायी उठता है, उससे अधिक चपल हो जाते हैं वनमाली और तबतक उसका पीछा नहीं छोड़ते, जबतक वह—'सर्वान् धर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज'का अर्थ नहीं समझता। कितने पुण्यवान् थे वे, तथा कथित असुर, कितने दुर्धर्ष थे वे समाज और धर्म विरोधी तत्व, जिनकेलिए उस परम पुरुषको नर रूप धारण करना पड़ा।

इस युगमें नीरोको बहुत बड़ा दार्शनिक बताया जाता है और उसकी इस दार्शनिकता का प्रमाण माना जाता है उस घटनाको, जिसमें नीरोका महल जलता रहा और वह पेड़पर बैठा वंशी बजाता रहा। पेड़पर बैठकर महलको जलता हुआ देखते हुए वंशी बजाना किसी दार्शनिकताका लक्षण किस तरह हो सकता है, यह तो वे ही जाने, पर यह वास्तवमें दार्शनिकता नहीं थी। सच्ची दार्शनिकता तो कृष्णके जीवनमें मिलती है, जहाँ उन्होंने अपने ही वंशका सर्वनाश करा दिया था। कृष्ण समयके पार देखते थे, इसलिए यदुकुलका विनाश उनकेलिए आवश्यक था, क्योंकि जिस वंशमें कृष्ण जैसे पुरुषका अवतार हुआ हो, वह कृष्णके नाम, पराक्रम और गुणोंके कारण प्राप्त सत्ताके मदमें अपने कर्त्तव्यको भूलकर समाजका विरोधी बन जाता, शोषक और विलासी बन जाता। फिर कृष्णके महा प्रयाण बाद भी कुछ पीढ़ियों तक तो कृष्णके नाम पर ही उनका अखण्ड साम्राज्य रहता तथा ऐसी स्थितिमें उनमें अधर्म और अवगुणोंका प्रभाव भी बढ़ता ही और कृष्णका उद्देश्य था अधर्म नाश, इसलिए इस उद्देश्यकी पूर्तिकेलिए उन्होंने अपने ही वंशका विनाश किया और उस विनाशमें वे प्रवृत्तियाँ आपसमें ही लड़कर नष्ट हो गईं। (इसी आधारपर स्वतन्त्रता प्राप्तिके पश्चात् गान्धीने कांग्रेसको समाप्त कर देनेका सुझाव दिया था।)

यह था कृष्णका फलवान् दर्शन। युग बदलते रहें, समय और स्थितियाँ परिवर्तित होती रहें, किन्तु कृष्णका माधुर्य क्षीण नहीं होगा, उनका कीर्तिमान कभी धूसरित नहीं होगा। वे सम्राटोंके सम्राट् हैं, पर दयालु इतने कि, उनकी अपनी कोई पसन्द नहीं। अपने भक्तकेलिये वे बहुरूपिया बन सकते हैं, पहरेदार हो सकते हैं, और घुटनुओंके बल चलने वाले नन्हे मुन्ने हो सकते हैं। सम्पदा उनको नहीं लुभा सकती, वे तो प्यारके भूखे हैं,

साधन हीन और पीड़ित उनकी कृपाका अधिकारी पहले है। भारतीय साहित्य और संस्कृति में प्राण प्रतिष्ठा करनेवाले वे ही हैं, युगोंसे भोगी जाकर भी उनकी भक्ति अछूती है। कवि उनकी रूप माधुरीपर निसार हैं। यदि यह भी कहा जाय कि, कवि बननेकेलिए उनको प्रेम करना आवश्यक है तो कोई अत्युक्ति नहीं। सूरके पदोंमें और मीराके भजनोंमें आजभी वही निर्दोप सौन्दर्य है। उनके सौन्दर्यके आगे संसारका सारा सौन्दर्य व्यर्थ है।

आज जो व्यक्ति मूर्ति पूजाकेलिए यह कहते हैं कि, जिस भगवान्‌को अनन्त कोटि ब्रह्माण्डका नियामक वताया जाता है, उसे थोड़ी ऊँची और मोटी मूर्तिमें वे किस तरह विठा देते हैं और इस आत्म हीन तर्कके सहारे वे या तो देहवादी हैं या निर्गुणोपासक। मेरी समझमें वे भी युद्ध क्षेत्रमें मोहाविष्ट अर्जुनके ही समान हैं, उनके पास केवल तर्क है, थोथी प्रश्न परम्परा और अभिमानमें भरा अविवेक है, अन्यथा इस शरीरमें और लीला विग्रहमें वास्तवमें वह शक्तिपुञ्ज है ही। यह अवश्य है कि, उसको देखनेकेलिए न श्रद्धा है, न शरणागति है। यों सामान्य रूपसे भी कोई न्याय शास्त्रका एक लक्षण समझले कि, जिसमें गन्ध है वह पृथ्वी तत्व है, तो उसे इस सारे विस्तारमें उस तत्वके दर्शन होते जायेंगे और वह सारे चक्रको देखकर विस्मित हो उठेगा कि,यही धरती माता कितने-कितने रूपोंमें व्याप्त है। वह भी अर्जुनकी तरह निहाल हो जायगा। एक क्षणको यह भी मान लें कि, कृष्णका विराट् रूप व्यावहारिकता नहीं होसकता, पर अर्जुनकी दिव्य दृष्टि तो सबकेलिए सुलभ है और जब वह दृष्टि मिल जाती है, तो कृष्णका विराट् रूप सामने होगा ही।

शास्त्रोंने कृष्णका जो भी रूप वर्णन किया है, वह सत्य है, उनकेलिए जो विशेषण प्रयुक्त किये गए हैं, वे उनके आयाम विशेष हैं अन्यथा उनका समग्रवर्णन तो वे सारे शब्द और विशेषण मिलकर भी नहीं कर पायें। व्यक्ति उनके किसी भी नामको पकड़कर इस व्यामोहसे पार उतर सकता है।

गिरिवर धारण

हाल लखि व्रजकौ बिहाल जनता कों जान,
नखपै उठायौ गिरि गिरिवर लालनें।
छाँह में बुलाय चाँह पूरी करी प्रानिन की,
बाँह गहि राखी लाज व्रज की गुपालनें॥
सक्र सरमानों हरि चक्र को प्रभाव देखि,
बक्र भौंह सूधी करीं द्विभुज विसालनें।
सात दिन रात की विफल बरसात भयी,
मात खायी व्रज में सुरेस की कुचालनें॥

—भगवादत्त चतुर्वेदी

भगवान् श्रीकृष्णकी महत्ता और उनके विश्वोपयोगी
सन्देशोंका प्रभावपूर्ण चित्र

"आजके उत्पीड़ित, और संत्रसित मानव-समाजकी दैन्य-मुक्तिका एकही उपाय है—भगवान् श्रीकृष्णके सन्देशोंका मनन, चिन्तन ओर ग्रहण। भगवान् श्रीकृष्णके सन्देशोंमें ही वह बल है, जो 'वादों'की ग्रंथियोंको तोड़कर मानव हृदयको स्पर्श करके, एक समाव मानव जीवनपर अमृतकी वृष्टि कर सकता है।"

भगवान् श्रीकृष्ण और उनका सन्देश

श्रीशंकरदयालु श्रीवास्तव एम० ए०

महाभारतके महानायक भगवान् कृष्ण अपने युगके सर्वश्रेष्ठ पुरुष थे, इसका प्रमाग स्वयं महाभारतसे मिलता है। सभापर्वके अन्तर्गत अर्घदान-विषयक छत्तीसवें अध्यायमें यह कथा वर्णित है कि, जब महाराजा युधिष्ठिरने इन्द्रप्रस्थमें आयोजित राजसूय यज्ञके अवसरपर भीष्म पितामहसे यह जिज्ञासाकी कि, सबसे पहले किसको अर्घ्य प्रदान किया जाय, किसकी अग्रपूजाकी जाय तो उन्होंने कहा :—

एषह्येषां समस्तानां तेजोबल पराक्रमैः।
मध्ये तपन्निवाभाति ज्योतिषामिव भास्करः॥

—ये भगवान् कृष्ण इन सब राजाओंके बीच अपने तेज, बल और पराक्रमसे उसी प्रकार देदीप्यमान हो रहे हैं, जैसे ग्रह नक्षत्रोंमें भुवन-भास्कर भगवान् सूर्य', दूसरे शब्दोंमें उन्होंने भगवान् कृष्णको सम्पूर्ण भूमंडलमें सबसे अधिक पूजनीय बताया। राजसूय-सभामें बड़े-बड़े राजर्षि महर्षि, देवर्षि, महात्मागण तथा मेधावी पुरुष एकत्र थे। गुरु द्रोणाचार्य तथा भीष्म पितामहके अतिरिक्त त्रिकालदर्शी महर्षि वेदव्यास भी उपस्थित थे। ऐसे महा-पुरुषोंके रहते हुए भगवान् श्रीकृष्णकी अग्रपूजा निर्विवाद रूपसे यह प्रमाणित करती है कि, श्रीकृष्ण उस युगके सर्वश्रेष्ठ पुरुष थे। वे युग पुरुष थे।

जब शिशुपालको श्रीकृष्णकी अग्रपूजा सह्य नहीं हुई और उसने उनकी प्रतिष्ठाके विरुद्ध अपशब्दोंका प्रयोग आरम्भ किया तो भीष्म पितामहने पुनः कहा कि, 'भगवान् श्रीकृष्णही संपूर्ण जगत्में सबसे बढ़ कर हैं, वे केवल हमारेलिए ही परमपूज्य हैं ऐसी बात

नहीं है, वे तो तीनों लोकोंके पूजनीय हैं। यह सम्पूर्ण जंगत् वृष्णिकुल-भूषण भगवान् श्रीकृष्णमें ही पूर्ण रूपसे प्रतिष्ठित है।

भगवान् कृष्ण वस्तुतः ईश्वरावतार थे, किन्तु जीवनका कार्यकलाप अधिकांशतः नर-लीलाके रूपमें था। वे बल-पराक्रम और ज्ञान, सबमें समान रूपसे बढ़े-चढ़े थे। प्रारम्भ से ही श्रीकृष्ण मल्ल-विद्यामें निपुण थे और बाल्यकालमें ही अनेक असुरोंका उन्होंने संहार किया। उनकी असाधारण विद्या-बुद्धि और ज्ञानका परिचय हमें श्रीमद्भगवद्गीतासे मिलता है। गीता व्यावहारिक जीवन-दर्शन ही नहीं है, उच्चकोटिका तत्वज्ञान तथा अध्यात्मवाद उसमें निहित है। भगवान् श्रीकृष्णकी प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। उनकी कार्य-कुशलता अद्भुत और असाधारण थी। उनकी सूझ-बूझ भी विलक्षण थी। महाभारतके कर्णधार बनकर उन्होंने सत्यमार्गपर आरूढ़ पाण्डवोंको विजय दिलाई, यद्यपि कौरव अपेक्षा-कृत कहीं अधिक साधन सम्पन्न और सैनिक दृष्टिसे शक्तिशाली थे। भीष्मपितामह तथा द्रोणाचार्य जैसे कुशल एवं महारथी कौरव-सेनापतियोंको उन्हींकी प्रेरणा तथा सूझबूझसे पाण्डव मार सके। पाण्डव सत्य-परायण थे, उनका पक्ष न्यायपूर्ण था, इसीलिए उनपर भगवान् कृष्णका वरद हस्त सदैव रहता था।

धर्मकी स्थापनाकेलिये ही भगवान् कृष्णका अवतार हुआ था, इसलिए वे जीवन भर अनीति, अन्याय और अत्याचारसे जूझते रहे। अनेक दैत्यों एवं असुरोंके अतिरिक्त उन्होंने कंस, जरासंध तथा शिशुपाल जैसे अत्याचारी और अधर्मपरायण राजाओंका वध किया। कौरवोंका पाप और दुराचार बहुत बढ़ गया था। दुर्योधनको अपने सैन्यबल तथा ऐश्वर्य का बड़ा अभिमान हो गया था। अधर्म एवं अन्यायके मूलोच्छेदनकेलिये ही महाभारतका युद्ध रचाया गया। इस सन्दर्भमें यह बात उल्लेखनीय है कि, भगवान् कृष्णको महायुद्ध इष्ट नहीं था, वे युद्धको बचाना चाहते थे। वे अहिंसा और प्रेमके समर्थक थे। वे मान-वतावादी थे और विश्वबन्धुत्व उनका आदर्श था। वे विश्वशान्ति चाहते थे। यदि यह बात न होती तो वे कौरवों व पाण्डवोंके बीच शान्ति-समझौता करानेके निमित्त दूतका काम करनेकेलिए कभी न तैयार होते। उन्हींके सत्परामर्शसे धर्मराज युधिष्ठिर और उनके भाई केवल पाँच गाँवोंके प्राप्त होनेपर संतुष्ट हो जानेकेलिए तैयार थे। बाल्यकालसे ही कौरवों ने भाँति-भाँतिके जो कष्ट एवं यातनायें दी थीं, जो अत्याचार और उत्पीड़न किये थे, उन सबको शान्ति और एकताकेहितमें पांडव भुला देनेकेलिये सहमत हो गये। किन्तु फिर भी कौरव-नरेश पांडवोंको पाँच गाँव देनेकेलिये तैयार नहीं हुए।

शान्ति-दूत बनकर भगवान् कृष्ण हस्तिनापुर गये। महात्मा विदुरने उन्हें बताया कि, दुराग्रही दुर्योधन आपकी नेक सलाहपर कोई ध्यान नहीं देगा—उसे अपनी शक्ति और सेनाका बड़ा घमण्ड है, इसलिये उसके सामने आपका शान्तिका प्रयास निरर्थक होगा। फिरभी श्रीकृष्णने शान्ति स्थापनका औचित्य सिद्ध करते हुए कहा कि, 'यह सारी पृथ्वी विनष्ट होने जा रही है। जो इसे मृत्युपाशसे बचानेका प्रयास करेगा, उसे उत्तम धर्म प्राप्त

होगा। मनुष्य यदि अपनी शक्ति भर किसी धर्म-कार्य को करनेका प्रयत्न करते हुए भी उसमें सफलता न प्राप्त कर सके तो भी उसे उसका पुण्य तो अवश्य ही प्राप्त हो जाता है।' महात्मा विदुर ने जो कहा, वही सत्य सिद्ध हुआ। किन्तु श्रीकृष्ण कौरव सभा में गये और शान्ति-समझौतेके पक्षमें प्रभावपूर्ण भाषण भी दिया। किन्तु संधिका प्रस्ताव स्वीकार करना तो अलग रहा, उल्टे दुर्बुद्धि दुर्योधन ने उन्हें कैद कर लेनेका षडयंत्र रचा, जो श्रीकृष्ण के कौशल से सफल नहीं हो सका।

हस्तिनापुरकी इस यात्राका जो वर्णन महाभारत में मिलता है, उससे यह प्रमाणित होता है कि, श्रीकृष्ण साधारण शान्तिदूत नहीं थे। राज्यकी ओरसे उनके स्वागत-सत्कारका बड़ा प्रबन्ध किया गया था। मार्ग में अनेक रमणीक विश्राम-स्थान तथा सभामंडल बनवाये गये और वहाँ सभी प्रकारकी उपभोग-सामग्री रखने की व्यवस्था की गई। साधारण दूतकेलिए ऐसी व्यवस्था करने का विधान नहीं था। यह बात भी उल्लेखनीय है कि, जब श्रीकृष्ण कौरवसभा में पधारे तो धृतराष्ट्र, भीष्म, द्रोणाचार्य आदि सहित सभी लोग उठकर खड़े हो गये। वास्तव में श्रीकृष्ण हस्तिनापुर में भी बहुत लोकप्रिय हो चुके थे। तभी तो घर-घर में यह चर्चा होती थी कि, पांडवोंकी ओरसे परम पराक्रमी भगवान् कृष्ण यहां पधारेंगे। वे हम लोगोंकेलिए माननीय तथा पूजनीय हैं, उनका यहाँ सम्मान होना चाहिए। यह सब इस बातका ज्वलन्त प्रमाण है कि, श्रीकृष्ण अपने समय में सभीके पूज्य बन गये थे। वे बड़े प्रतापी और यशस्वी थे।

भगवान् श्रीकृष्ण उच्चकोटि के राजनीतिज्ञ और कूटनीतिज्ञ थे। किन्तु उन्हें राजसत्ताका मोह नहीं था। राजसत्ताका लोभ होता तो कंस, जरासंध आदि का बध करने के बाद स्वयं सिंहासन ग्रहण कर सकते थे। अपने तेज-प्रताप तथा अपने पराक्रमसे अपने लिए विशाल साम्राज्य का निर्माण कर सकते थे। किन्तु वे सात्विक वृत्तिके परम त्यागी पुरुष थे। राजाओंको परास्त करके भी उनका राज्य उन्हींके वंशवालोंको सौंप देते थे। इस त्यागसे उनका यश और गौरव खूब बढ़ा। वे सबके वन्दनीय बने। अपनी राजनीतिज्ञता अथवा राजनीतिक कौशलके द्वारा ही वे महाभारत के कर्णधार और सूत्रधार बने और पाण्डवोंका पक्ष ग्रहण करके भी वे दोनों पक्षोंके लिए पूज्य बने रहे। पाण्डवोंको विजय दिलानेकेलिए उन्होंने महा धनुर्धर अर्जुनका सारथी होना स्वीकार किया। यह उनकी सहज विनम्रता का परिचायक था। उनकी यह विशेषता थी कि, किसी काम को छोटा नहीं मानते थे। सारथी बन कर और अस्त्र न उठानेका संकल्प करके भी उन्होंने महासमर में जो चमत्कार कर दिखाया, उसका सामर्थ्य केवल उन्हीं में था।

भगवान् श्रीकृष्णकी महानताका सबसे बड़ा प्रमाण श्रीमद्भगवद्गीता है, जिसको भारत में ही नहीं, सम्पूर्ण संसार में आदर-सम्मान प्राप्त हुआ है। कुरुक्षेत्रके मैदानमें दोनों ओर की सेनाओं को एकत्र देखकर जब अर्जुन किंकर्त्तव्य-विमूढ़ हो गये तो भगवान् श्रीकृष्ण

ने उन्हें संबोधित करते हुए जो उपदेश दिये, वे गीता में संग्रहीत हैं। वास्तव में उनका दिव्य सन्देश समग्र मानव-जातिकेलिए है। आत्मा की अमरता तथा देह की क्षणभंगुरता का जो उपदेश दिया गया है, उसे हृदयंगम कर लिया जाय तो मनुष्य मृत्यु के भय से मुक्त हो सकता है। उसमें साहस और निर्भीकता का उदय हो सकता है और वह बड़े-बड़े काम अपने जीवन में कर सकता है। आत्माकी अमरता विषयक गीता के उपदेश से अनुप्राणित होकर ही अनेक भारतीय क्रान्तिकारी दासता की शृंखला से भारतमाताको मुक्त करनेकेलिए, हाथ में गीता लेकर हँसते-हँसते फांसी की तख्तियों पर चढ़ गये।

प्रत्येक भारतीयको यह बात भी अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए कि, शान्ति और अहिंसा के समर्थक भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन को युद्ध के लिए क्यों तैयार किया? उन्होंने समझाया कि, अन्याय, अत्याचार और अधर्म के विरुद्ध युद्ध करना धर्मयुद्ध है। कौरवों ने बड़ा अधर्म किया था, इसलिए उनके विरुद्ध लड़ना परम धर्म है। इसी तरह आजकी परिस्थिति में चीन और पाकिस्तान से युद्ध करना धर्म युद्ध है, क्योंकि वे राज्य-विस्तार के लिए, स्वार्थ के लिए, भारत को उत्पीड़ित करनेकेलिए आक्रमण करते हैं। उनके कब्जे से अपने प्रदेशों को मुक्त करनेकेलिए युद्ध छेड़ा जाय तो भी वह धर्मयुद्ध कहलायेगा। भारत सरकार को भगवान् कृष्ण के इस उपदेश, गीता की इस नीति के अनुसार आचरण करना चाहिए। अन्याय-अत्याचार के विरुद्ध दुर्बलता दिखाना कायरता है, कापुरुषता है।

भगवान् श्रीकृष्णने निष्काम कर्म का जो सिद्धान्त प्रतिपादित किया है, वह भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। इस उपदेश का सार यह है कि, अपना धर्म और कर्त्तव्य समझकर कोई काम करे, उस कर्मके फलकी लालसा मन में न रखे। फलेच्छा का त्याग करके कर्म करना ही निष्काम कर्म है। भगवान् का कथन है:—

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।

—कर्म करना ही तेरा अधिकार है, उसका फल तुम्हारे अधिकार में नहीं है।

आगे कहते हैं:—

योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनंजय।
सिद्ध्य सिद्ध्योः समोभूत्वा समत्वं योग उच्यते॥

—हे अर्जुन आसक्ति का त्याग कर तथा योग में स्थिर होकर कर्म कर, सिद्धि-असिद्धि अथवा सफलता-विफलता, और हार-जीत में समान बुद्धि रखकर काम करता चल, इस समत्व भाव को ही योग कहते हैं।

निष्काम कर्म अथवा कर्मयोगका सिद्धान्त गीता का प्राण है। मानवमात्रकेलिए वह सत्पथ-प्रदर्शक है। अपने इस उपदेश या सिद्धान्त की विवेचना भगवान् ने बड़े विस्तार से की है। भगवान् कृष्ण स्वयं महान कर्मयोगी थे। सदैव कर्त्तव्य कर्म में संलग्न रहते थे। उनके सिद्धान्तके अनुसार किसीको कर्महीन होकर, आलसी होकर नहीं बैठना चाहिए। सदैव कर्त्तव्य-कर्म करता जाय, फल या परिणाम की कोई परवाह न करे। अपने स्वार्थ के लिए नहीं, सेवा भावसे परोपकारकेलिए काम करे। निष्काम भावसे कर्म करनेवाला

व्यक्ति कभी कर्म-बन्धन में ,नहीं फंसता। यह सिद्धान्त सर्वथा व्यवहारिक है,उसे असंभव या अव्यावहारिक नहीं कहा जा सकता। अभ्यास और साधना अपेक्षित अवश्य है, किन्तु फलकी इच्छा त्याग कर कर्म करने वाला कभी दुख या चिन्ताके सागर में नही पड़ सकता। सदैव सुखी बना रह सकता है।

गीता के दूसरे अध्याय में स्थितप्रज्ञ, बारहवें अध्याय में सच्चे भक्त तथा सोलहवें अध्याय में दैवी सम्पत्ति के जो लक्षण बतलाये गये हैं, वे वास्तव में सज्जन पुरुष, आदर्श पुरुषके लक्षण हैं। जो मनुष्य अच्छा और भला बनना चाहता है, उसे अपने जीवन में इन लक्षणोंको उतारने का सतत प्रयत्न व अभ्यास करना चाहिये। ऐसा मनुष्य कभी दुखी नहीं रह सकता। कभी स्वार्थी या लोभी नहीं बन सकता, कभी अधर्म या अन्याय नहींकर सकता। स्वयं कष्ट सहकर और त्याग करके भी दूसरों का हित करनेकेलिए सन्नद्ध रहेगा। ये सब व्यवहारिक उपदेश हैं, जो मानव को सच्चा मानव, आदर्श मानव बना देने की क्षमता रखते हैं।

गीता में सब शास्त्रों का निचोड़ आ गया है। वह आद्योपान्त पठनीय और माननीय है। प्रायः सभी लोग अर्जुन की तरह अज्ञान से उत्पन्न मोह में पड़े हुए हैं। वे अपने कर्त्तव्य को स्थिर नहीं कर पाते। जैसे भगवान् कृष्ण के उपदेशों से अन्तमें अर्जुनका मोह नष्ट हो गया, उसी तरह गीता का मननपूर्वक अध्ययन करने से सभी लोग अज्ञानजनित मोह से मुक्त होकर सच्चे कर्मयोगी की तरह कर्त्तव्य कर्म में रत हो सकते हैं।

जाना—अजाना चोर

बड़ा काला है जाना-अजाना चोर! इससे कौन परेशान नहीं है? और तिस पर भी एक-एक हृदय पर इस का अधिकार है।

मिट्टी के घरौंदे की ओट में वह झप-झाईं-सा झाँक कर गायब हो जाता है—कभी प्रखर रवि के रूप में, कभी नन्हीं सी कोमल किरण बन कर।

एक क्षणको आश्चर्य-विमुग्ध होकर मुंदे हुए नयन अगले क्षण मिट्टी के घरौंदेकेलिये ही खुलते हैं, चोर के चिह्न भी ढूंढे नहीं मिलते।

फिर किसी और घरौंदे के पीछे खड़बड़ और पलक की झपक में एक दम सन्नाटा।

खेलता है, खिलाता है और हँपा-हँपा कर मारे डालता है। तनिक भी तो चैन नहीं लेने देता!

दम फूल जाने के कारण निराश हो, कुछ गिर पड़ते हैं और मोह वश घरौंदों में ही उलझ कर रहजाते हैं। पर काले चोर को यह सब भी कब सहन होता है। फिर झाँकी की झोंक देता है और पागल बनाकर हँपाने लगता है।

खेल चल रहा है इसी तरह युगों से। खिलाड़ियों के मन ही नहीं भरते। शायद न भरने में ही भरना है।

—हरिकृष्णदास गुप्त 'हरि'

भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा उपदिष्ट मानव-धर्म की
विचारपूर्ण व्याख्या

"जो हितकर है, जो सर्व सुखदायक है, और जिससे सर्व जनको दुखों से परिमुक्ति मिलती है, वही धर्म है। भगवान् श्रीकृष्णने इसी मानव-धर्मका—विश्वधर्मका उपदेश दिया है। आजका दुखी मानव, भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा उपदिष्ट धर्मसे ही शांति और सुख प्राप्त कर सकता है।"

भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा उपदिष्ट मानव-धर्म

श्रीकृष्णदत्त भारद्वाज

'धर्म' शब्द की कई व्याख्याएँ की गई हैं। उनमें से सर्वाधिक लोकप्रिय लक्षणके अनुसार, जिस कर्म के करने से मनुष्यकी सांसारिक उन्नति हो और अन्त में निःश्रेयस् अथवा निर्वाण मिले, वह धर्म है। गीता में बताया हुआ धर्म भी इसी प्रकार का है। इसमें प्रवृत्तिमार्ग और निवृत्तिमार्ग का अद्भुत समन्वय है।

देवकीनन्दन श्रीकृष्णने कुरुक्षेत्रके रणांगणमें कुन्तीनन्दन अर्जुनको जिस धर्मका-कर्मयोगका उपदेश दिया था, वह मानव-धर्म था। वह कर्मयोग इसलिये मानव-धर्म कहलाता है, क्योंकि उसका उपदेश श्रीकृष्ण ने अर्जुनके माध्यम से मानवमात्रको दिया था।

एक और दृष्टि से भी गीताका कर्मयोग मानव-धर्म कहा जा सकता है। वह यह है कि, प्रारम्भ में विवस्वान् ने श्रीभगवान् से इस धर्मका उपदेश प्राप्त कर अपने पुत्र मनु को इसकी शिक्षा दी थी, और तत्पश्चात् मनु ने इक्ष्वाकु द्वारा अपनी प्रजा में इसका प्रचार और प्रसार किया। गीता में कहा है—

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम्।
विवस्वान् मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत्॥
एवं परम्पराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः।

अतएव मनुप्रोक्त होने के कारण भी यह कर्मयोग मानव-धर्म कहा जा सकता है। दर्शन-शास्त्रके प्रौढ़ समीक्षकोंका यह कथन है कि, गीताका समस्त प्रवचन ईशोपनिषद् की

ही अद्‌भुत व्याख्या है। यह कथन पूर्णरूप से सत्य ही प्रतीत होता है, क्योंकि उस उपनिषद् में कर्म-योग का उपदेश दिया गया है। उस उपनिषद् के पहले दो मंत्र इस प्रकार हैं—

ईशावास्यमिदं सर्वं यत् किं च जगत्यां जगत्
तेन त्यक्तेन भुंजीथा मा गृधः कस्यस्विद् धनम् ॥
कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः
एवं त्वयि नान्यथेतोस्ति न कर्म लिप्यते नरे ॥

अर्थात् इस जगत् में जो कुछ है, वह ईश्वरसे अधिष्ठित और अनुप्राणित है। सासांरिक पदार्थोंको त्याग-बुद्धि से अपने काम में लाओ और किसी अन्य व्यक्तिकी सम्पत्तिको लोभभरी दृष्टि से मत देखो। मनुष्यको चाहिये कि, वह कर्तव्यका पालन करता हुआ ही सौ वर्ष की आयु तक जीवित रहने की इच्छा करे। इस भावना से काम करता हुआ मनुष्य कर्म-कर्दममें लिप्त नहीं होता। गीता में जिस कर्मयोगका उपदेश दिया गया है, वह इन्हीं दो मन्त्रों का विशद व्याख्यान है। कर्तव्य का पालन करना ही मानव का सर्वप्रथम धर्म है।

श्रीकृष्णने अर्जुनके युद्ध में प्रवृत्त न होने के भाव को अनार्यजुष्ट, अस्वर्ग्य और अकीर्त्तिकर बताया था। इससे हमें यह शिक्षा मिलती है कि, धार्मिक जीवन व्यतीत करने वालोंको ऐसा कोई काम नहीं करना चाहिये, जिसको अनार्य लोग करते हों, जिसके करनेसे स्वर्गकी प्राप्ति न हो, और जिसके कारण मनुष्यको अपयश का भाजन बनना पड़े।

कोई भी मनुष्य बिना काम किये एक क्षण भी नहीं रह सकता। यदि वह काम करना छोड़ देगा, तो उसका जीवित रहना भी दुष्कर है। अतएव कर्म करते रहना ही मनुष्यकेलिये स्वाभाविक है।

कर्म दो प्रकार का होता है—अच्छा और बुरा। बुरे कर्म को अधर्म कहते हैं, और अच्छे को धर्म। अधर्म का फल है अवनति और नरक, एवं धर्मका फल है उन्नति और निर्वाण। अतएव बुद्धिमान् व्यक्ति अवनति और नरक देनेवाले अधर्मका परित्याग करके उन्नति और निर्वाण देनेवाले धर्मको ही अंगीकार करते हैं।

धार्मिक जीवन व्यतीत करनेकेलिये मनुष्यको जो तैयारी करनी पड़ती है, उसमें दो बातें मुख्य हैं। एक तो हृदयकी दुर्बलताका त्याग, और दूसरा सात्विक आचार और विचार। हृदय की दुर्बलताका अभिप्राय उन सभी दोषों से है, जो मनुष्यको अवनतिके गर्त में गिरा देते हैं। भगवान् कृष्णने अर्जुनको ललकारते हुए स्पष्ट घोषणा की थी—

क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत् त्वय्युपपद्यते।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तप ॥

अर्थात् अरे वीर, तू कायर मत बन। तुझे यह अकर्मण्यता शोभा नहीं देती। अपने हृदयकी इस दुर्बलताको त्याग कर उठ, और धार्मिक युद्धके लिये उद्यत हो जा।

काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य जैसे दोष मानवीय दुर्बलताके द्योतक हैं। जब तक ये मनुष्यके हृदयमें निवास करते हैं, उसमें धार्मिकताको नहीं आने देते। अतएव इन दोषोंका समूलोच्छेद आवश्यक है।

नाटकका प्रत्येक पात्र यदि अपनी भूमिकाका उचित निर्वाह करता रहे, तो उस नाटकसे सहृदय प्रेक्षकोंको भी आह्लादका अनुभव होता है, और अभिनेताओंको भी। इस विश्वके रंगमंचपर तो प्रत्येक प्राणी ही अभिनेता है। यदि वह कुशलता-पूर्वक अभिनय कर सके, तो उसे भी आनन्द मिले, और अन्य प्राणियोंको भी। अपने-अपने कर्त्तव्यका उचित रीतिसे पालन करना योग है—"योगः कर्मसु कौशलम्।" और यही ईश्वरकी सर्वोच्च अर्चा है—

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धं विन्दति मानवः।

गीतामें इसीको 'यज्ञार्थं कर्म' भी कहा गया है। यज्ञ शब्दके अनेक अर्थ हैं। उनमें से एक अर्थ ईश्वर भी है—"यज्ञो वै विष्णुः।" जो काम विष्णुकी आराधनाकेलिए—भगवान्‌की प्रीतिकेलिए—किया जाता है, उसे ही यज्ञार्थं कर्म कहते हैं। ऐसे कर्म में स्वार्थकी गन्ध तक नहीं होती, अतएव वह बन्धनका कारण नहीं होता। बन्धनका कारण तो वह कर्म होता है, जो स्वार्थ-भावनासे भावित हो, राग और द्वेषसे सम्पृक्त हो—

यज्ञार्थात् कर्मणोऽन्यत्र लोकोयं कर्म-बंधनः।

कर्म, उपासना अथवा ज्ञानकी साधनाके द्वारा जो महात्मा सिद्ध हो जाते हैं, वे भी कर्म करते रहते हैं। उन लोगोंके कर्म करते रहनेका जनतापर बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ता है। महात्माओंको सत्कर्ममें निरत देखकर जनता भी सत्कर्मशील हो जाती है। कर्म करनेका यह उद्देश्य लोकसंग्रह कहलाता है। यह मानवका परम धर्म है। इसके द्वारा वह अपने कल्याणके साथ ही अपने साथियोंको भी कल्याण-मार्गपर चलनेकी प्रेरणा देता रहता है। क्योंकि—

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्त्तते।।

अर्थात् समाजमें वरिष्ठ व्यक्तियों द्वारा किया हुआ कार्य आदर्श माना जाता है। उसी आदर्शका अन्य जन अनुकरण किया करते हैं। महाराज जनक ऐसे ही लोकसंग्रही कर्मयोगी थे, जिनका उदाहरण श्रीकृष्णने गीतामें दिया—

कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः।

स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण भी सदा लोकसंग्रही कर्मयोगमें लगे रहते थे। उनका वचन है—

न मे पार्थास्ति कर्त्तव्यं त्रिषु लोकेषु किंचन।
नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त्त एव च कर्मणि।।

यदि ह्यहं न वर्त्तेयं जातु कर्मण्यतन्द्रितः
मम वर्त्मानुवर्त्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः।

अर्थात् हे अर्जुन, तीनों लोकोंमें मेरे लिए कोई काम करना बाकी नहीं है। ऐसा कोई पदार्थ नहीं है, जो मुझे न मिल सका हो, तथापि मैं कर्मयोगमें ही प्रवृत्त रहता हूँ। यदि मैं सावधानीसे कर्मका अवलम्बन न करूँ, तो मुझे आदर्श मानकर सारे मनुष्य भी काम करना छोड़ बैठेंगे।

धर्मके अनेक अङ्ग हैं। उन सभीको गीताकी भाषामें दैवी सम्पद् कहा जाता है। श्रीकृष्णने अर्जुनके प्रति दैवी सम्पद्के जिन २६ धर्मोंका नाम-निर्देश किया था, वे इस प्रकार हैं—

निर्भयता, अन्तःकरणकी पवित्रता, विद्याका उपार्जन, दान देना, इन्द्रियोंपर संयम रखना, यज्ञ करना, धार्मिक ग्रन्थोंका अध्ययन, सहिष्णुता, सरल व्यवहार, अहिंसा, सत्य-भाषण, क्रोध न करना, दूसरोंकी भलाईकेलिए अपने सुखका त्याग, शान्ति, दूसरोंकी निन्दा न करना, दीनोंपर दया, लोभ न करना, स्वभावकी कोमलता, लज्जाशीलता, निरर्थक चेष्टा न करना, शक्तिका उपार्जन, अपराधको क्षमा करना, विपत्तिमें धैर्य धारण करना, शरीर, मन और वाणीको पवित्र रखना, व्यर्थ शत्रुभाव न रखना, और अभिमान न करना।

अर्जुन दैवी सम्पत्तिके सद्गुणोंसे सम्पन्न थे, अतएव उन्होंने शत्रुओंपर विजय प्राप्त किया। भगवान्ने पहले ही कह दिया था—"मा शुचः संपदं दैवीमभिजातोऽसि पाण्डव।" अर्थात् हे पाण्डुनन्दन, शोक मत करो, क्योंकि तुम दैवी सम्पत्तिसे विभूषित हो।

दैवी सम्पत्तिवाले धर्मोंकी सूचीमें सर्वप्रथम स्थान मिला है, 'अभय'को। अभयका अर्थ है भयका अभाव अर्थात् निर्भयता वा निडरता। मानसिक रोगोंमें भय भयंकर है। भयके अनेक कारण होते हैं, जिनमें कर्त्तव्यका पालन न करना प्रधान है। सदा भयभीत रहनेसे शरीरमें पाचन-रस ठीक-ठीक काम नहीं कर पाते। पाचनमें कमी आ जानेसे खाया-पिया अंग नहीं लगता, जिसका परिणाम यह होता है कि, भयभीत मनुष्य सदा रोगी रहने लगता है। जीवन वही सार्थक है, जिसमें किसी प्रकारका भय न हो। न शत्रुसे भय हो, न मित्रसे। यही वैदिक भावना है—'अभयं मित्रादभयममित्रात्।" निडर रहकर ही, मनुष्य जीवनके सब क्षेत्रोंमें सफलता प्राप्त कर सकता है।

दैवी सम्पत्तिसे सम्पन्न होकर अपने कर्त्तव्यका पालन करना ही सर्वोत्तम मानव-धर्म है। इसी धर्मका आदेश हमें श्रीकृष्ण भगवान्ने गीताके माध्यमसे दिया है।

श्रीकृष्णका साथ

जो श्रीकृष्णको प्राप्त कर लेता है, वह संसारका सर्वोत्कृष्ट धन और वैभव प्राप्त कर लेता है और जो श्रीकृष्णको खो देता है, वह सभी कुछ खो देता है। जो श्रीकृष्ण से हीन है, वही दरिद्री है और जो उसके साथ आलाप करता है, वही सच्चा धनी है।

*

जन्माष्टमीके पर्व 'मूलमें' अन्तर्निहित एक
नवीन उद्भावना का चित्र

"शक्ति ही सृष्टिका मूल तत्त्व है । सृष्टि के वेणु में शक्तिका ही रव गुंजित है । और तो और, स्वयं परमात्मा भी शक्ति ही परमात्मा है । अतः जो 'शक्ति' को छोड़कर चलते हैं, निश्चित् है कि, वे परमात्मा, सृष्टि, और जीवन का सही अर्थ नही जानते ।"

जन्माष्टमी—परमात्मा और 'शक्ति' के प्राकट्य का महापर्व

श्रीउमाशंकर दीक्षित एम. ए. सा. र.

जहाँ गोपनीय विश्वानन्दकी लहरियोंके साथ आत्म सम्बन्ध हो और जहाँ सर्व शक्तिमान्के सशक्त रूपकी ओर उन्मुख अनेक जीवोंमें एकता और उल्लासिता का प्रवाह हो, वहां प्रज्ञा और सौन्दर्य से युक्त दिव्य शाश्वत चमत्कार उन्हें मिलनकेलिये वाध्य कर देता है । यही दिव्य सम्मोहन और आकर्षण का जादू आद्याशक्ति का चमत्कार है । यही पराशक्ति भगवान्‌की उन्मादक एवं सहयोगिनी माधुरीका टोना है, जिसके सामीप्यसे असीम सुख की सृष्टि होती है । शक्ति के बिना शक्तिमान् प्रभुकी कोई सत्ता या महत्ता नहीं ।

श्रुतियोंने शक्ति और शक्तिमान्‌स्वरूप को अद्वय तत्त्व प्रतिप्रादित किया है । यही एकतत्व परमपुरुष और पराशक्ति से द्विविध है । जब परम पुरुष सृष्टि स्थिति और संहार में रत होते हैं, तब उनकी अभिन्न सहचरी आद्याशक्ति भी तदेव रूपेण साथ ही साथ रहती है । भगवान् श्रीकृष्णके व्रजलीला करनेके प्रारम्भमें भगवती महामायाने अपनी विचित्र, अद्भुत लीलासे समस्त जगत्‌को चमत्कृत कर दिया । भगवान् श्रीकृष्णकी सहायतार्थं उनकी पराशक्ति योगमायाने भी लीला वैचित्रीसे नन्दबाबाके घर यशोदा देवीके गर्भ से जन्म ग्रहण किया—

नन्दगोप गृहेजाता यशोदा गर्भ सम्भवाः ।

ततस्तौ नाशयष्यामि विन्ध्याचल निवासिनी ।।

जिस समय समाज में कंस के द्वारा भीषण दानवी बाधा उपस्थित हो गई थी, वसुदेव और देवकी कारागार में दारुण संकट का सामना कर रहे थे, दानवताके विकराल थपेड़ों से मानवता चीख उठी थी, तब सर्वशक्तिमान् जगन्नियता प्रभु ने "सम्भवामि युगे युगे" की प्रतिज्ञाको कार्य रूपमें लानेकेलिये तथा "परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्" केलिये देवकी के गर्भ में जन्म ग्रहण किया । तभी भगवान् श्रीकृष्ण की सहायतार्थ योगमाया ने भी अपनी पूर्व प्रतिज्ञा, यथा—

इत्थं यदा यदा बाधा दानवोत्था भविष्यति ।
तदा तदावतीर्याहं करिष्याम्यरिसंक्षयम् ।।

—जब जब दानवी बाधायें इस प्रकार उपस्थित होंगी, तब तब मैं अवतार ग्रहण करके तुम्हारे (देवताओं के) शत्रुओं का नाश करूँगी ।"—के अनुसार श्रीकृष्णके जन्म से पूर्व ही अवतार ग्रहण कर लिया । श्रीमद्भागवत् के अनुसार आकाशवाणीकी उद्घोषणा को ब्रह्माजी ने देवताओं को सुनाते हुए कहा—

विष्णोर्माया भगवती यया सम्मोहितं जगत् :
आदिष्टा प्रभुणांशेन कार्यार्थे सम्भविष्यति ।।

—विष्णु की माया भगवती, जिसने इस सम्पूर्ण जगत् को सम्मोहित कर रखा है, वह भी भगवान् की आज्ञा से तुम्हारे कार्यकेलिये अपने अंशों से उत्पन्न होगी ।

भगवान् श्रीकृष्ण ने भी भारी दानवी बाधाको संसार में उपस्थित देखकर स्वयं ही योगमाया को आदेश दिया—

"गच्छ देवि व्रजं भद्रे गोप गोभिरलंकृतम्"

—हे देवि, हे भद्रे ! गोप और गौओंसे अलंकृत व्रज को जा तथा वहाँ नन्दके घरमें रोहिणीके उदरमें, देवकीके जठर से निकाल कर मेरे शेष नामक तेज को स्थापित करदे ।

अथाहमंशभागेन देवक्याः पुत्रतां शुभे ।
प्राप्स्यामि त्वं यशोदायां नन्दपत्न्यां भविष्यसि ।।

तब मैं स्वयं देवकीके पुत्र रूप में प्राप्त हूँगा और तू नन्द की पत्नी यशोदा के यहाँ जन्म लेना ।

अर्चिष्यन्ति मनुष्यास्त्वां सर्वकामवरेश्वरीम् ।
धूपोपहारबलिभिः सर्वकामवरप्रदाम् ॥
नामधेयानि कुर्वन्ति स्थानानि च नरा भुवि ।
दुर्गेति भद्रकालीति विजया वैष्णवीति च ॥
कुमुदा चण्डिका कृष्णा माधवी कन्यकेति च ।
माया नारायणीशानी शारदेत्यम्बिकेति च ॥

—तब सम्पूर्ण वरदान एवं कामनाओं को देने में समर्थ तेरी संसारसें सभी मनुष्य धूप, उपहार, बलि आदि से पूजा करेंगे तथा पृथ्वीपर मनुष्य तेरे नाम और धाम का कीर्तन करेंगे । तेरे दुर्गा, भद्रकाली, विजया, वैष्णवी, कुमुदा, चण्डिका, कृष्णा, माधवी, कन्या, माया, नारायणी, ईशानी, शारदा, अम्बिका आदि आदि नाम होंगे ।

तब योगमायाने भगवान् श्रीकृष्णके आदेशानुसार तत्तत् कर्म सम्पादन कर उनकी लीला में योगदान किया तथा स्वयं गोकुलमें नन्दगोप के घर यशोदा के गर्भ से अवतार ग्रहण किया ।

इस प्रकार भाद्रपद कृष्ण अष्टमीको भगवान् श्रीकृष्ण के जन्म से पूर्व ही भगवती योगमाया का प्रादुर्भाव हुआ था । अतः जन्माष्टमी केवल श्रीकृष्ण की ही जन्म तिथि नहीं है, अपितु आद्याशक्ति त्रिपुर सुन्दरी भगवती दुर्गा की भी वर्षगाँठ है ।

इसके पश्चात् जब वसुदेवजी गोकुल से उस कन्यारूपी योगमायाको मथुरा ले आये और श्रीकृष्ण को चुपके से वहाँ कर आये, तब योगमायाने अपना पर्दा हटाया, जिसमें समस्त संसार सोया हुआ था । तभी कंस जागकर भागा हुआ आया और देवकी की गोद से बरबस उस कन्या को खींच लिया, उसके चरण पकड़कर पछाड़ने लगा । पछाड़नेकेलिये जैसे ही उसने ऊपर को उठाया, तो वह उसके हाथों से निकल कर एवं उसके मस्तिष्कमें पैर से प्रहार कर आकाश में चली गई और अष्टभुजावाली, जिसमें दिव्य आयुध वर्तमान है, दिव्य वस्त्रों, अलंकारों से भूषित तथा सिद्ध, गंधर्व, अप्सरा, किन्नर आदि के द्वारा वन्दित स्वरूप से प्रकट हुई और कंससे निम्न प्रकार कहने लगी—

किं मया हतया मन्द जातः खलु तवान्तकृत् ।
यत्र क्व पूर्वशत्रुर्मा हिंसीः कृपणान् वृथा ॥

—हे मन्द बुद्धिवाले मेरे मारने से क्या प्रयोजन ! तेरा मारनेवाला यहीं कहीं पैदा हो गया है । तू दीनों को वृथा मत मार ।' इस प्रकार कंस को चेतावनी देकर भगवती देवी अन्तर्धान हो गई ।

तात्पर्य यह है कि, विश्वव्यापिनी, जगन्मोहिनी महाशक्तिके बिना जगन्नियन्ता

प्रभु भी निष्क्रिय है। महाकवि कालिदास के मतानुसार शिव भी शक्ति के बिना केवल शव रह जाते हैं। भारतीय दर्शन भी प्रत्येक पदार्थकी दृश्य जड़सत्ताकी नियामक शक्तिको स्वीकार करते हैं। यह शक्ति चेतन है, क्योंकि बिना चेतन आधार के जड़ की कोई स्थिति नहीं। पराशक्ति से ही शब्द एवं वस्तुओं की उत्पत्ति हुई। परमतत्व ब्रह्म है। शक्ति के स्फूर्तिस्वरूप धारण करने पर उसने ब्रह्म में तेज रूप से प्रवेश किया, तब विन्दु का प्रादुर्भाव हुआ। ब्रह्म में शक्तिके प्रवेश से नारी तत्व—नाद व्यक्त हुआ। ये दोनों तत्व मिलकर (नाद एवं विन्दु) ही सर्व शक्तिमान् सर्वेश्वरकी सत्ता हैं। सृष्टि के प्रत्येक क्रम एवं विकासमें इन दोनों तत्वोंका ही आगम है।

अतः जन्माष्टमीके महान् राष्ट्रीय पर्व पर श्रीकृष्ण पूजाके साथ साथ आद्याशक्ति भगवती महामाया की पूजा अनिवार्य रूप से होनी चाहिये, क्योंकि वे भगवान् की नित्य सहचरी एवं सहयोगिनी हैं। उनकी पूजा से प्राणी परम ऐश्वर्यको प्राप्त करता है। यथा—

नन्दा भगवती नाम या भविष्यति नन्दजा।
स्तुता सा पूजिता भक्तया वशी कुर्याज्जगत्त्रयम्॥

नन्दा नाम की देवी, जो नन्द से उत्पन्न होनेवाली है, उनकी यदि भक्ति पूर्वक स्तुति और पूजा की जाय तो वे तीनों लोकों को उपासक के आधीन कर देती हैं।

प्रेमालाप

बसो मेरे नैनन में नँदलाल॥
मोहनि मूरत साँवरि सूरति नैना बने बिसाल।
अधर सुधारस मुरली राजत उर बैजन्ती माल॥
क्षुद्रघंटिका कटि तट सोभित नूपुर शब्द रसाल।
मीराँ प्रभु संतन सुखदाई भगत बछल गोपाल॥

सखी म्हारो कानूड़ो कलेजे की कोर॥
मोर मुकुट पीताम्बर सोहै कुंडल की झकझोर।
बिंद्राबन की कुंज गलिन में नाचत नंद किसोर॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर चरण कँवल चितचोर॥

सखी री! लाज बैरण भई।
श्री लाल गुपाल के सँग काहे नाहीं गई॥
कठिन क्रूर अक्रूर आयो साजि रथ कहँ नई।
रथ चढ़ाय गुपाल ले गयो हाथ मींजत रही॥
कठिन छाती स्याम बिछुरत विरह तें तन तई।
दासि मीराँ लाल गिरधर बिखर क्यों ना गई॥

—मीराँ

"भगवान् श्रीकृष्णकी आराधनामें 'समर्पण' ही मुख्य है। जितना 'समर्पण' का भाव होगा, उतनाही आराधनाका तरु भी फलेगा। 'श्रीकृष्णः शरणं मम्'—उस समर्पण का बीज मंत्र है।"

श्रीकृष्णः शरणं मम्

डा० श्रीमधुकर भट्ट एम. ए. पी. एच. डी

भारतीय धर्म ग्रन्थोंमें सर्वश्रेष्ठ, सर्वज्ञानका भंडार श्रीमद्भगवत्गीता है और गीता का मूल है—"श्रीकृष्णः शरणं मम्।" वैष्णवोंका तो मूल मंत्र ही यही है। इसीका जप करते हुए मानव प्रभुके श्री चरणोंमें अपने को समर्पित कर देता है। परम पुरुष श्रीकृष्णके चरणोंमें मन लगाने, उनके प्रति अटूट भक्ति पैदा करनेकेलिए यह मंत्र रामबाण है। मैं इस मंत्र का मूल स्रोत और मूल प्रेरणा श्रीमद्भगवत् गीताकोही मानता हूँ।

सम्पूर्ण उपदेश देनेके पश्चात् भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं :—

"मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे॥

"हे अर्जुन ! तू केवल मुझ सच्चिदानन्दघन वासुदेव परमात्मा में ही अनन्य प्रेम से नित्य-निरन्तर अचल मनवाला हो और मुझ परमेश्वरको ही अतिशय श्रद्धा, भक्ति सहित, निष्काम भाव से नाम, गुण और प्रभाव के श्रवण, कीर्त्तन, मनन और पठन-पाठन द्वारा निरंतर भजनेवाला हो तथा मेरा, (शंख, चक्र, गदा, पद्म और किरीट, कुण्डल आदि भूषणों से युक्त, पीताम्बर, वनमाला और कौस्तुभमणिधारी विष्णु का) मन, वाणी और शरीर के द्वारा सर्वस्व अर्पण करके श्रद्धा एवं भक्ति से पूजन करनेवाला हो और मुझ सर्व शक्तिमान् विभूति, बल, ऐश्वर्य आदि गुणों से युक्त सबके आश्रयरूप वासुदेव को विनय भाव पूर्वक भक्ति सहित दंडवत् प्रणाम कर, ऐसा करने से तू मेरे को ही प्राप्त होगा, यह मैं तेरे लिए सत्य कहता हूँ, क्योंकि तू मेरा अत्यन्त प्रिय है।"

"सर्वधर्मान्परित्यज्य माम् एकम् शरणम् व्रज।
अहम् त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।।"

इसलिये सर्व धर्मों को अर्थात् संपूर्ण कर्मों के आश्रयको त्यागकर केवल एक मुझ सच्चिदानन्दघन वासुदेव परमात्मा की ही आनन्दशरण को प्राप्त हो। मैं तेरे सम्पूर्ण पापों को नष्ट कर दूँगा।

"माम् एकम् शरणम् व्रज" ही अनन्य शरण का द्योतक है। कहने का तात्पर्य यह है कि, सर्व प्रकार से परब्रह्म परमात्मा के अनन्य शरण हो जाना ही मनुष्य का उद्देश्य होना चाहिये। इसी की पूर्ति के लिये "श्रीकृष्णः शरणं मम्" के मूल मंत्र का जाप होता है। संसार बंधन से मुक्ति केलिए भक्ति आवश्यक है और हृदय में श्रीचरणों में भक्तिकेलिये 'श्रीकृष्णः शरणं मम्' का भाव अनिवार्य है। श्रीमद्भगवत् गीता में परम पुरुष श्रीकृष्ण के वचनामृत का पुण्य श्रवण करके अर्जुन ने भगवान् की स्तुति की और अन्त में निवेदन किया—

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत।
स्थितोऽस्मि गत सन्देहः करिष्ये वचनं तव।।

"हे अच्युत! आपकी कृपा से मेरा मोह नष्ट होगया है, और मुझे स्मृति प्राप्त हुई है, इसलिये मैं संशय रहित हुआ स्थित हूँ और आपकी आज्ञा पालन करूँगा।"

इस प्रकार स्पष्ट है कि, हर दृष्टि से ब्रह्म की शरण में जाने के लिये दूषित मनोविकारों एवं सांसारिक त्रिविध तापों से दूर होना सबसे अधिक आवश्यक है। लज्जा, भय, मान, बड़ाई, मोह, लोभ, काम, क्रोध, और आसक्ति को त्याग कर एवं शरीर और संसार में अहंता, ममता से रहित होकर, केवल एक परमात्मा को ही परम आश्रय, परम गति और सर्वस्व समझना तथा अनन्य भावसे अतिशय श्रद्धा, भक्ति और प्रेमपूर्वक निरन्तर भगवान् के नाम, गुण, प्रभाव और स्वरूप का चिंतन करते रहना एवं भगवान् का भजन करते हुए उनकी आज्ञानुसार कर्त्तव्य-कर्मों का निःस्वार्थ भाव से केवल परमेश्वर केलिये आचरण करना, यह सब प्रकार से परमात्मा की अनन्य शरण होना है।

भक्त बार-बार परमात्माके प्रति कातर वचनों से "श्रीकृष्णः शरणं मम्" की विनती करके अपने को अनासक्त भाव से परब्रह्म श्रीकृष्ण के चरणों में अपने को समर्पित कर देता है, तो स्वतः ईश्वर जीव को अपना लेता है। भगवान् की शरण में निवास करनेवाले भक्तजनोंकेलिए यह मूलमंत्र है। इस मूलमंत्र के जपने से कई जन्मों के शुभ संस्कारों का उदय होता है, तब मनुष्य को प्रभुकृपा से यह ज्ञान प्राप्त होजाता है कि, संसार मिथ्या है, सत्य है तो मात्र श्रीकृष्ण। इसी उच्चकोटि-भाव के दृढ़ हो जानेपर भक्त

अपने-आपको मन, वचन, तथा कर्मसे प्रभु के अर्पण कर देता है, फलतः भक्त बिना किसी सांसारिक इच्छा के अपना कर्त्तव्य भगवान् के लिये ही करता है।

'मोह' पापका मूल है। "श्रीकृष्णः शरणं मम्" मोह को काट फेंकने का अस्त्र है। इसी मंत्र से सिद्धि और पुनः मुक्ति होती है। मनुष्यके हृदय में सांसारिक माया-मोह के प्रति विरक्ति और परब्रह्म श्रीकृष्ण के प्रति आसक्ति पैदा करनेवाले इस महामंत्र का बड़ा चमत्कार है। इस मंत्र के प्रभाव से भक्ति का प्रसार होता है। प्रभुमें अनन्य भक्ति पैदा करनेवाला यह मंत्र मुक्ति को देनेवाला है।

'श्री मद्भागवत' में भक्तिकी प्राप्ति के साधन बतलाते हुए भगवान् ने उद्धव जी से कहा—

"भक्तियोगः पुरैवोक्तः प्रीयमाणाय तेऽनघ ।
पुनश्च कथयिष्यामि मद्भक्तेः कारणं परम् ॥
श्रद्धामृतकथायां मे शश्वन्मदनुकीर्त्तनम् ।
परिनिष्ठा च पूजायां स्तुतिभिः स्तवनं मम ॥
आदरः परिचर्यायां सर्वाङ्गैरभिवन्दनम् ।
मदभक्तपूजाभ्यधिका सर्व भूतेषु मन्मतिः ।"

कहने का तात्पर्य यह है कि, अनासक्त भाव से (सांसारिक इच्छा से विहीन होकर) भगवान् की कथा सुने, नाम स्मरण करे, श्रीकृष्णके चरणों में अपने को समर्पित कर श्री कृष्ण से बार-बार विनती करे कि, वह परब्रह्म अपनी शरण में लेकर मुक्ति का अभय वरदान दे। तब भक्ति और पुनः मोक्ष की प्राप्ति होती है।

यही कारण है कि, भक्त "श्रीकृष्णः शरणं मम्" के मंत्र का जाप करके अपने को उनके चरणों में लगाने की प्रतिज्ञा करता है। क्योंकि वह समझता है कि—

सर्वसाधनहीनस्य पराधीनस्य सर्वतः ।
पापीपोनस्य दीनस्य श्री कृष्णः शरणं मम् ॥

"मैं समस्त साधनों से हीन, सब ओर से पराधीन, सभी पापों से पुष्ट हूँ।' और इसीलिये वह प्रार्थना करता है कि, हे परब्रह्म श्रीकृष्ण आप मुझे अपनी शरण में लें। मुझ दीन, हीन, पापीकेलिये श्रीकृष्ण ही शरण हैं।

श्रीकृष्णः शरणं मम्

सत्य की आराधना

सत्यकी आराधना भक्ति है और भक्ति 'सिर हथेली पर लेकर चलने का सौदा' है अथवा वह 'हरि का मार्ग' है, जिसमें कायरता की गुंजाइश नहीं है, जिसमें हार नाम की कोई चीज है ही नहीं। वह तो 'मरकर जीने' का मंत्र है। महात्मागांधी

"श्रीकृष्ण भगवान्ने मानवजीवनकी पूर्णताकेलिए निष्काम कर्म योगको ही सर्वोत्तम साधन बताया है। निष्काम कर्मयोग क्या है, उसे किस प्रकार किया जा सकता है, प्रस्तुत निबन्धमें इसकी विवेचना पढ़िए।"

श्रीकृष्णका निष्काम कर्मयोग

श्रीसीकर

मुक्ति एक जन्मकी सिद्धि नहीं। यह जन्मान्तरके निरन्तर प्रयत्न द्वारा ही प्राप्त होती है। इस सिद्धावस्थामें मनुष्यको एक से अनेक और अनेकमें एकका प्रत्यक्ष बोध होता है। निष्काम कर्ममें रुचि उत्पन्न करनेकेलिए भगवान्ने उसकी ये विशेषतायें बताई हैं :—

१—इसमें बीजका नाश नहीं होता। निष्काम भावसे किया गया एक कर्म साधकको दूसरे कर्मोंके लिए प्रेरित करता है। इस प्रकार क्रम प्रारम्भ होकर गति स्वयं आ जाती है, जो मनुष्यको शिखर पर पहुँचा देती है।

२—इसमें कोई प्रतिकूल परिणाम नहीं होता, न किसी विघ्नकी संभावना रहती है और न ही बाहरी सामग्री अथवा संयोग की आवश्यकता।

३—इसके परिणाममें, भावनाकी न्यूनाधिकताके अनुरूप आन्तरिक मल-शुद्धितत्काल होती है। सकाम कर्मके समान, जिसका फल विधिके समाप्त होने पर ही मिलता है, इसमें अन्त तक नहीं ठहरना पड़ता।

४—इसमें निश्चयात्मक बुद्धिकी इकाई रहती है। सकाम कर्ममें मनुष्यकी शक्तिको छिन्न-भिन्न करनेवाली अनेक अभिलाषायें होती हैं।

केवल कर्त्तव्य समझ, सिद्धि असिद्धिमें समभाव रखते, स्वार्थ, ममत्व, आसक्ति और कर्त्तापनके अहंकारसे रहित हो, कर्म करनेमें उत्साह, धैर्य एवं तत्परतापूर्वक शक्ति भर मरण पर्यन्त लगे रहना—यह है निष्काम कर्म योगकी विधि।

ऊपरकी व्याख्यामें 'शक्ति भर' शब्द जुड़ जानेसे वह विधि कहलाती है और इसके दूर हो जानेसे सिद्ध पुरुष द्वारा पूर्ण कर्म योगाचरण निष्ठा। निष्ठाका अर्थ विधिकी पूर्णता है।

जन्म जन्मान्तरमें जीवके चित्तपर अंकित संस्कारोंका जब तक निष्काम कर्म द्वारा क्षय न हो, रागद्वेप, सुख दुःख, द्वन्दों तथा वासनाओंसे अन्तःकरणकी शुद्धि नहीं होती, तब तक जन्म मरणका चक्कर चला करता है। इसके निर्मल हो जानेपर आत्म स्थिति प्राप्त होती है, जो ज्ञानकी पराकाष्ठा, अमृतत्व, मुक्ति, कर्मपाशका नाश, जीवनका अन्तिम उद्देश्य इत्यादि पृथक् पृथक् नामोंसे वर्णनकी जाती है।

अभ्यास किए बिना जलमें अथवा पदयन्त्रपर सन्तुलन रखना जिस सकार सम्भव नहीं, इसी प्रकार संसारमें निष्काम कर्म बिना समबुद्धि-सिद्धि असिद्धि, मानापमान, सुख दुःख द्वन्दोंमें अविचल रहना-प्राप्त नहीं होती। मोक्षका द्वार यही है। इसीके प्राप्त हो जानेसे मनुष्यकी अपार आत्मशक्तिके भण्डारका पट खुल जाता है। महात्मा गांधी इस युगके उदाहरण हैं।

धार्मिक पुस्तकोंके पठन पाठन द्वारा निर्बल संस्कारोंको सबल बनानेके लिए अभ्यासमें नियमपूर्वक लाना चाहिए। संस्कार पुष्ट होंगे। समाचारपत्र तथा अन्य पुस्तकें पढ़ना, यदि सांसारिक व्यवहारके निमित्त मोहित किए रखता है, तो अन्तःकरणकी उन्नतिके मूल्यको, विवेक बुद्धि द्वारा, पहचानकर उसका भी प्रबन्ध करना उचित है।

दसों इन्द्रियों सहित शरीर, मन, और बुद्धि द्वारा मनुष्यसे जो कर्म बनते हैं उनका फल सुख दुःख मिश्रित होता है। निरा सुख ही मिले, यह सम्भव नहीं। सुखकी अभिलापामें दुःख भी अवश्य भोगने पड़ते हैं। इन सुख दुःखके द्वन्दोंसे व्याकुल होकर जीवको प्रबल जिज्ञासा होती है कि, क्या कोई ऐसा सुख है, जो निरा सुख ही सुख हो, जिसमें दुःखका नाम भी न हो। यदि है तो उसको पानेका मार्ग क्या है? ऋपियों मुनियोंने यह निष्कर्ष निकाला कि, सुख दुःख मन द्वारा ही व्यापता है। इसीको शान्त अर्थात् संकल्प विकल्प रहित, ममत्व, आसक्ति, अहङ्कार आदि विकारोंसे मुक्त करने पर ही सुख दुःखकी वासनाओंको नष्ट किया जा सकता है। विवेक बुद्धिके आश्रयसे योग साधन द्वारा मनपर उन्होंने विजय प्राप्त की। इस पर बुद्धिका पूर्ण अधिकार हो जानेसे यह समभावमें स्थित हो गया और इस प्रकार आत्मतत्वके प्रकाशमें परमानन्दका अनुभव हुआ, अक्षय सुखका भण्डार दीखा—नित्य अखण्ड और अनन्त-जिसके सामने संसार क्या, स्वर्ग तकके सबसुख

निष्काम कर्म द्वारा पूर्व संस्कार कटते हैं, नए संस्कारोंके बननेका मार्ग रुकता है और सिद्धि प्राप्त होने पर वासनायें नष्ट हो मन और बुद्धि निर्मल हो जाते हैं। आत्म बुद्धिज परमानन्द रूपी मुक्ताणि प्राप्त होती है, जिसके हाथ लगनेसे अन्य अनित्य और दुःख मिश्रित सुख विचलित नहीं करते। स्वर्ण,कोहिनूरके सामने लोहेके कोयलेका क्या मूल्य?

कर्मका महत्व इस कारण है कि, एक तो उसके बिना संसार चक्र चल ही नहीं सकता, दूसरे उसके द्वारा ही आत्मोन्नति सम्भव है। पानीमें पड़कर ही तैरना सीखा जा सकता है, उससे विलग रहकर नहीं। निष्काम कर्म किए बिना पूर्व संस्कारोंका क्षय होना सम्भव नहीं। इनके क्षय बिना बुद्धि की समभाव में स्थिति कहाँ? बिना समत्व बुद्धि के आत्मानन्द अप्राप्य।

कर्म से बचने का मार्ग नहीं, किन्तु उसको करने की उस विधिको ढूँढ़ निकालो, जिससे वह फलदायक न बनकर सुख-दुखके परे की स्थिति में पहुँचादे। कामना रहित होकर परमार्थ बुद्धिसे किए कर्मोंका निश्चित फल व्यक्ति पर न पड़कर समष्टिपर पड़ता है, अथवा जिस व्यक्तिविशेषके निमित्त किया जाए, उस पर। कामना, आसक्ति, वासनादि न रहने पर अन्तःकरण में संस्कारों का बनना बन्द हो जानेसे फलका त्याग भी स्वयं होजाता है। वह व्यक्ति को छू नहीं सकता।

परमानन्दका अन्तिम लक्ष्य मन, बुद्धि, अहंकार को शांत, अक्रिय किए बिना आत्मानुभव जैसी दुर्लभ वस्तुकी प्राप्ति हो ही नहीं सकती। मृत्यु के पश्चात् क्या होता है, यह तो कौन बता सकता है, परन्तु सिद्ध पुरुषोंने अपने जीवनमें इस परमानन्दकी सिद्धावस्थाको प्राप्तकर संसार में घोषणा की कि, जनक की जीवन मुक्ति दशा ध्रुव सत्य है, जो चाहे उस मार्गपर चलकर देख ले। मार्ग कठिन अवश्य है, परन्तु असम्भव नहीं। भगवान्‌ने कहा है कि, विवेक बुद्धि द्वारा सम्पूर्ण विषयों, वस्तुओं व पदार्थोंका सत्यासत्य मूल्यांकन करनेपर जो वैराग्य उत्पन्न होता है—वैराग्य अर्थात् रागद्वेष का छूटजाना—उससे तथा धैर्य युक्त अभ्यास से कठिन-से-कठिन वस्तु सुलभ हो सकती है। उत्कंठा, श्रद्धा, उत्साह और पुरुषार्थ चाहिए।

जन्म जन्मान्तरके प्रयत्न और उद्योगद्वारा पूर्ण ज्ञान-प्राप्तिके फलस्वरूप परम शान्ति एवं सुख मिलते हैं। लक्ष्य प्राप्तिके मार्ग में पड़ना ही सत्य जीवन है, जो प्रति क्षण उन्नति की ओर गति प्रदानकर सुख और शांति देता है।

पूर्ण सिद्धि प्राप्त होनेपर पूर्व संस्कार सब भस्म हो जाते हैं। जैसे, रुई का ढेर अग्नि पाते ही जलकर राख, वैसेही जन्म-मरण के चक्र का अन्तःकर्म का परिणाम अवश्य होगा, पर वह निष्कामकर्त्ता को नहीं छू सकता। परिणाममें जो सुख होगा—निष्काम कर्म का परिणाम दुःख तो हो ही नहीं सकता—वह परमार्थ में होगा।

सकाम कर्मसे अन्तःकरण में वासना रूपी चिह्न अंकित होते हैं। पूर्वजन्मों से लेकर अबतक के सकाम कर्मों का फल सुख-दुःख स्वरूपमें अवश्य होगा। उन सबको भोगनेकेलिये जीवको भविष्य में अनेक योनियोंमें भ्रमण करना पड़ता है।

उदाहरण—किसी व्यक्तिने निष्काम कर्म प्रारम्भ करके सौ जन्म तक अभ्यास करनेपर सिद्धि प्राप्तकी। इन शत जन्मों के अभ्यास-समयके सुख दुःख के भोग फिर अवश्य

एकत्र होंगे। भूतकालके भोगों में से बहुत से भोगोंको इन सौ जन्मों में उसने भोगकर उनका अन्त कर दिया होगा। जो शेष रह गए और इन सौ वर्षों में फिर भोगनेको इकट्ठे हो गए—निष्काम कर्म द्वारा भोगवान् कर्मों का संग्रह अवश्य कम पड़ जायेगा—उन सबको मान लिया जाय कि, गणना 'क' है।

निष्काम कर्मके अभ्यास से दो फल हुए। एक तो भविष्यमें भोगने योग्य सुख-दुःखकी मात्रा घट गई और दूसरे समत्व बुद्धि, योग की ओर रुचि होगई, जिससे वासना का त्याग होने लगा। वासना रहित हो जानेपर सुख-दुख भोगनेकी स्थिति का ही लोप हो जाता है। अहंकार छूटने से आत्मामें स्थिति हो जाती है। इसका अर्थ यह नहीं कि, सिद्ध पुरुषकी ज्ञानेन्द्रियाँ, मन एवं बुद्धि जड़ तुल्य होकर सर्दी, गर्मी, सुख दुख पाने की क्षमता ही खो देती हैं। ऐसी आत्मस्थिति का अर्थ है कि, किसी दशा में भी उसको सुख दुख व्यथित नहीं करते हैं और वह उनको इतने शांत भावसे सहन करता है कि, जैसे उनकी सुख दुख रूपता ही उसके लिए जाती रही हो। उसमें अपार शक्ति उत्पन्न होजाती है। महात्मा ईसा इसके उदाहरण हैं। इस प्रकार जब सिद्ध पुरुषके सम्पूर्ण पूर्व संस्कार पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति होने पर भस्म होजाते हैं और नए संस्कारोंका बनना बन्द होजाता है, तब पुनर्जन्म का कोई कारण नहीं रहता और वह मुक्त होकर ब्रह्ममें लीन हो जाता है। यही 'क' का भस्म हो जाना कहा है।

निष्काम कर्म से अन्तःकरण में वासना के चिह्न, जो सुख-दुखके पाश हैं, अंकित नहीं होते। कर्म का फल अवश्य होगा, परन्तु वह जगत्-चक्र चलाने में लग जायेगा, निष्काम कर्म द्वारा पाप कर्म तो बन ही नहीं सकता, जिसका परिणाम दुख हो। उत्तम कर्म ही बनेगा। उनका सुख रूप-परिणाम जगत् हितार्थ लगता रहेगा।

जन्म जन्मान्तरके अभ्यास द्वारा निष्काम कर्म योग में सिद्धि प्राप्त हो जानेपर वह स्थिति आती है कि, सब कुछ करते हुए भी कर्म फल से अलिप्त। जीवन मुक्त जनक इस के उदाहरण हुए हैं।

—※—

गीता की महत्ता

जो मनुष्य पवित्र गीताशास्त्र को पवित्र और शुद्ध होकर पढ़ता है, वह भय और शोक रहित होकर विष्णु लोक को प्राप्त होता है।

गीता अध्ययन करनेवाले तथा प्राणायाम करने वालों को पूर्व जन्म में किये हुए पापों का फल नहीं लगता। प्रतिदिन जल-स्नान करनेवाले का बाहरी मल धुल जाता है, किन्तु गीता रूपी जल में एक बार के ही स्नान मात्र से संसार रूपी मल नष्ट होजाता है।

सब शास्त्रोंको छोड़कर गीता का ही भली भाँति गायन करना चाहिये, जो कि, स्वयं भगवान् के मुख से निकली हुई है।

महाभारत रूपी अमृतका सार विष्णु भगवान् के मुँह से निकला है। यह गीतारूपी अमृत पीने से फिर जन्म नहीं लेना पड़ता। —महामना श्रीमदनमोहन मालवीय

"भगवान् श्रीकृष्ण इस समय अवतार रूपमें धरती पर नहीं हैं, पर श्रीकृष्ण भाव, जो शाश्वत है, इस समय भी धरतीके कण-कण में व्याप्त है । श्रीकृष्ण भाव का अर्थ है—धर्म, नैतिकता, विशुद्ध प्रेम, अनासक्ति, विवेक, सत्य और शौर्य । यही श्रीकृष्ण भाव तो जीवन की सफलता और विजयका मूल मन्त्र है ।"

यतो कृष्णः स्ततो जयः

श्रीजगन्नाथमिश्र गौड़ 'कमल'

महाभारतका भीषण संग्राम कौरव और पांडवों के बीच हुआ था । कौरवोंकी कुटिल नीति भाई—बन्धुओंकी प्रीतिको स्नेह-सलिलसे सींचकर जीवित नहीं रख सकी । इतिहास कहता है कि, महाभारतकाल अनीति, अनय, अत्याचार, अधर्म और अज्ञानान्धकार का युग था । भोगविलासमें लिप्त शक्तिशाली राजाओंके हृदयमें अकर्म और अनाचार के प्रति आस्था जागृत हो रही थी । सुसंगठित साम्राज्य अनियमितताके कारण छिन्न-भिन्न होकर मांडलिक राज्योंका रूप धारण कर रहे थे ।

यह ऐसे ही युगका कुप्रभाव था कि, भीष्मपितामह जैसे प्रचंड शूरवीर और द्रोणाचार्य्य जैसे वीरव्रती पुरुष कौरवोंके अन्याय-पक्ष से अपनेको भिन्न नहीं कर सके और उसी पक्षकी वेदी पर उन लोगोंने अपना बलिदान चढ़ाया । विचारहीनता और प्रज्ञा-शून्यता की तो पराकाष्ठा हो गई, जब धर्मराज युधिष्ठिर अज्ञानके अन्धकार में भूलकर अपनी पत्नी को द्यूत में हार गये । जिसे धर्मराज की संज्ञा दी जाती है, उनका यह निन्द-नीय कर्म धर्म पथभ्रष्ट होने का संकेत करता है ।

जितने भी युद्ध हुए हैं, या होते हैं, सभी का कोई न कोई लक्ष्य होता है । जिस युद्धकेलिये उत्प्रेरणा व्यक्ति, समाज या राष्ट्र से मिलती है, उसमें स्वार्थ, वैमनस्य, द्वेष या राजनैतिक उलझनों का समावेश हो सकता है, पर जिस युद्धकेलिये दैवी शक्ति से प्रोत्साहन मिलता है, वह युद्ध धर्म-युद्ध है और धर्म संस्थापनके लिये ऐसे युद्ध समय-समय पर अनि-वार्य्य होते हैं । महाभारत युद्धकेलिये किसी विलुप्त विशेष शक्ति ने भावना जागृत की, ऐसी बात नहीं हुई । स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ने इस युद्धकेलिये उत्प्रेरणा दी ।

शास्त्रोक्त धर्म और नीति मर्य्यादाका उलंघन भीषण क्रांतिका पूर्व रूप समझा जाता है । महाभारतका महायुद्ध उसी भीषण क्रांति का निदर्शन था । कौरवोंके अन्याय से अव्य-वस्थित रहकर भी अर्जुन महाभारत के युद्धको पाप-कर्म समझ रहे थे । उनकी यह शंका

अज्ञानमूलक थी। उस अज्ञानको गीता ने दूर किया । गीतामें कथित भगवान् श्रीकृष्णके प्रवचन जीवनके रहस्य और कर्म-साधनाके लक्ष्यको निरूपित करते हैं । वर्तमान मूल-कर्म ही जीवनको गौरव प्रदान कर सकते हैं और अधर्मके विरुद्ध-युद्ध करना धर्मानुकूल कर्म है। गीता के उपदेशों ने यह प्रमाणित कर दिया है।

पतनोन्मुख युगकी यह माँग थी कि, धर्मानुरूप परिवर्तनका प्रादुर्भाव हो । युद्ध का विस्फोट पृथ्वीको पाप-सिन्धु में डूबने से बचानेकेलिये आवश्यक था । कौरव दलके नायक दुर्योधनके अहंकार, अन्याय और अत्याचारोंकी आँधी ने इस विस्फोटकी ज्वाला को उकसाया । भगवान् श्रीकृष्ण ने इस ज्वालाको वड़वानलका रूप दिया और मूलतः अन्यायी दलको भस्मसात् होना पड़ा।

धर्मराज युधिष्ठिरने अपनी ममतामयी जननी कुन्ती, धर्मपरायण पत्नी द्रौपदी तथा प्यारे भाइयोंके साथ वनवासी बनकर अज्ञातवास किया । वापिस लौटनेपर अपने आवास और जीवन यापनकेलिये उन्होंने दुर्योधन से केवल पाँच गाँवोंकी मांग की, यद्यपि धर्मानुकूल उन्हें विराट सम्पत्ति का अधीश्वर होना चाहिये था । युधिष्ठिरके अनुरोधको भगवान् श्रीकृष्ण ने दुर्योधनके सामने रखा,पर उत्तर मिला "सूच्यग्रं नैव दास्यामि बिना युद्धेन केशव।" दुर्योधन ने ऐसा उत्तर देकर भगवान् श्रीकृष्ण के वचनकी अवहेलना की और मदान्धताका परिचय दिया। ऐसे ही अवसरके लिए भगवान् श्रीकृष्ण का वचन है —

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ।।

जब इस उक्तिके अनुसार भगवान् पृथ्वीपर आते हैं, तब "प्रयोजन मनुद्दिश्य नमन्दोऽपि प्रवर्तते" वाला सिद्धांत बतलाता है कि, उनका प्रत्येक कर्म विश्व हितकारक होता हैं। जिस प्रयोजनको ध्यानमें रखकर भगवान् ने महाभारत रचाया, उसका सुफल उनके पश्चात्के इतिहासोंसे स्पष्ट होता है।

राजा परीक्षितका सुशासन, जिनके शासनकाल में कलि बाँध डाला गया था तथा बौद्ध राज्यके देश व्यापी श्रमणाचारका गौरव महाभारतके बाद धर्म-न्याय युगके प्रमाण हैं। इतिहासके इन्हीं पृष्ठोंमें अशोक, चन्द्रगुप्त, पुष्पमित्र, समुद्रगुप्त और विक्रमादित्यकी स्मृतियाँ अंकित हैं।

महाभारतसे, आदि से लेकर अन्त तक भगवान् श्रीकृष्णका सम्बन्ध रहा है। भगवान् ने पाँडव या कौरव किसी दलका प्रतिनिधित्व युद्धमें नहीं किया । अस्त्रबल में पाँडव कौरवों से बढ़-चढ़ हों या नहीं,पर दल, बलमें तो अवश्य न्यून थे। न्याय पक्षवालों केलिये दलबल की अपूर्णता विजयमें बाधक नहीं होती, क्योंकि "यतो धर्मः स्ततो जयः ।"

भगवान् ने कौरवों और पांडवोंके बीच बढ़ते हुये शत्रुताके भावको दबानेकेलिए धर्मानुकूल अनेक चेष्टाएं की, पर दुर्योधन और उसके पक्ष के अन्य दुराचारी व्यक्तियोंकी असम्मतिके कारण द्वेष भाव का वृक्ष पनपता गया और अन्तमें उसका एक वृहद् रूप खड़ा हो गया। भगवान् सदा न्याय और धर्मपक्षवालोंकी सहायता करते हैं। ऐसा इसलिये होता है, क्योंकि धर्म और न्याय पक्षका अवलंबन करनेवाला भगवान्का स्मरण भी भक्ति भाव से करता है। वह भगवान् का भक्त होता है। पांडवों की भक्ति भगवान् श्रीकृष्णके प्रति थी, क्योंकि उनका विश्वास था, 'यतो कृष्णः स्ततो जयः।' भगवान् भी उनपर अपनी करुणाकी छायाका प्रसार रखते थे। यह भी सिद्ध है कि, महाभारत संग्राम में पांडवों की विजय होने का सारा श्रेय भगवान् को ही हैं। यद्यपि वीरव्रती द्रोणाचार्य पांडवों के विपक्ष में थे, फिर भी उन्होंने कहा था "यतो कृष्णः स्ततो जयः।"

पांडव दल के मुख्य धनुर्धारी योद्धा अर्जुन थे। वे भगवान् श्रीकृष्णके परम भक्त थे, उनकी आन्तरिक कामना थी कि, भगवान्की कृपा उनके साथ रहे। भगवान् अपने भक्तकी मनोकामनाको कब निष्फल होने देना चाहते हैं? पांडवों की प्रेम भक्ति से अनुप्रेरित हो उन्होंने पांडव-दल में अपनी व्यापकता जीवित रखी। उन्होंने अपने उपदेशों, प्रवचनों;संकेतों और कर्मों से यह स्पष्ट किया कि,वे पांडवों के धर्म-पक्ष के समर्थक थे।

जब युद्ध-क्षेत्र में अर्जुन मोहावृत होकर रण-विमुख होना चाहते थे, तो भगवान् ने गीता-ज्ञानके द्वारा उनका मोह-भंग किया और युद्ध करनेकेलिये प्रवृत किया। भगवान् ने अपने कौशलसे दुर्योधनको अपनी सेना देकर वीर अर्जुनका सारथी बनना स्वीकार कर लिया था। कुरुराज दुर्योधन का मत था कि—

आत्माहि कृष्णः प्रार्थस्यकृष्ण.स्यात्मा धनञ्जयः।
यद ब्रूयादर्जुनः कृष्णं सर्व कुर्यादसंशयम्॥
कृष्णो धनञ्जयस्यार्थे सर्वलोकमपि त्यजेत।
तथैव पार्थः कृष्णार्थे प्राणानपि परित्यजेत॥

भगवान् ने पांडव-दलमें अपनी व्यापकता रखकर किस प्रकार पांडवोंको विजयी बनाया और "यतोकृष्णः स्ततो जयः" की उक्तिको किस प्रकार प्रमाणित किया, यह महाभारत के कुछ विशेष प्रकरणोंपर दृष्टिपात करने से प्रगट हो जाता है।

अर्जुन को उपदेश देकर भगवान् ने उन्हें रण-क्षेत्रमें उतारा किंतु लड़नेकेलिये उद्यत स्वजनों को ही खड़े देखकर अर्जुन ने भगवान् से कहा—

दृष्ट्वेमं स्वजनं कृष्ण युयुत्सं समुपस्थितम्।

सीदन्ति मम गात्राणि मुखं च परिशुष्यति ।।
वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च जायते ।

श्रीकृष्ण समझ गये कि, अर्जुनको अपकीर्ति देनेवाला मोह हो आया है, जिसके कारण वह कर्म-पथ से विमुख हो रहा है । अपने भक्तको अनुचित मार्ग से खींचकर सत्य-पथ पर लाना सदा भगवान् चाहते हैं । भगवान् ने तदनुसार अपनी वाणीके अमृतसे अर्जुन के हृदय में अपरिमेय शक्ति का संचार किया—

क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते ।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परंतप ।।

भगवान् के इस प्रवचनोपदेशसे अर्जुनका प्रबल पौरुष जागृत हो उठा और उनके गांडीव की टंकार गूंज उठी । यहाँ यदि अर्जुन मोहसे प्रताड़ित होकर युद्ध-भूमिमें पीठ दिखा दिये होते तो पांडव-दलको कायरताके कलंक से मुक्ति नहीं मिलती और न्याय पक्षका केतु झुक जाता ।

चक्रव्यूह में प्रवेश करनेपर जयद्रथ ने सात महारथियोंकी सहायतासे अर्जुन-पुत्र वीर अभिमन्युको मार डाला । पुत्र की मृत्युसे क्रोधित होकर अर्जुनने यह प्रण किया कि,कल सूर्यास्त से पहले जयद्रथको मार डालूंगा और यदि ऐसा न करूंगा तो स्वयं चिता में जल कर भस्म हो जाऊंगा । अर्जुन के इस कठिन प्रण की टेकको देखकर श्रीकृष्ण चिन्तित हुए । जयद्रथ ने निश्चित कर लिया कि, सूर्यास्तके बाद जब अर्जुन चिता में भस्म होजांयगे तब वह बाहर निकलेगा । श्रीकृष्ण ने अपनी मायासे सूर्यको ढंकनेकेलिए तम-बादल उत्पन्न किया । सूर्य अस्त सा दिखाई पड़ने लगा । इसी समय जयद्रथ बाहर आकर आकाश की ओर देखने लगा । मायाका पर्दा हटातेहुए श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा, "जयद्रथका शीश बाणों से काटकर अपनी प्रतिज्ञा पूरी करो, किंतु एक बात का ध्यान रखना, जयद्रथ का शीश भूमि पर न गिरे । उसके पिता का वरदान है कि, जो उसकेशीशको काटकर भूमि पर गिरादेगा, उसके शीश के सौ टुकड़े हो जायेंगे ।

धरण्यां मम पुत्रस्य पातयिष्यतियः शिरः ।
तस्यापि शतधा मूर्धा पतिष्यति न शंसयः ।।

'ऐसा करो, जिसमें जयद्रथका शीश उसके पिता की गोद में जाकर गिरे ।' अर्जुन ने वैसा ही किया और भगवान्के संकेत से उनका प्रण पूर्ण हुआ । इस प्रकार चितामें स्वयं जलने से अर्जुन बचे ।

कर्ण के पास इन्द्र की दी हुई एक अमोघ शक्ति थी । उसका गुण था कि, वह जिस

पर चलेगी, वह कैसा भी वीर हो, उसके प्राण लेकर ही छोड़ेगी, किन्तु उसका प्रयोग एक ही वार हो सकेगा । कर्ण ने इस शक्तिको अर्जुन पर प्रहार करनेकेलिए रखा था, किन्तु आश्चर्य की बात थी कि, रणमें अर्जुन के सामने आने पर वे उस शक्ति का प्रयोग करना भूल जाते थे। इसमें श्रीकृष्णका चातुर्य्य था। श्रीकृष्ण अर्जुन के सारथी थे। रथ के सामने आने पर कर्णको पहले भगवान्के दर्शन होते थे । भगवान् उनको मोहित करलेते थे और वे शक्ति का प्रयोग भूल जाते थे।

अहमेवतु राधेयं मोहयाति युधांवर ।
ततो नावासृजच्छक्तिं पाण्डवे श्वेतवाहने ।।

यदि श्रीकृष्ण अपने चातुर्य्यका चमत्कार नहीं दिखलाते तो अर्जुन कर्णकी उस अमोघ शक्ति के सामने नहीं ठहरते।

युद्ध क्षेत्रमें महा धनुर्धर आचार्य द्रोण ने जब पांडवोंकी सेना का विध्वंस करना प्रारम्भ किया तो सारी सेना त्रस्त हो गई । द्रोणके वध की कोई सम्भावना दृष्टि में नहीं आ रही थी। श्रीकृष्णने सोचा, यदि पांडव दल भयभीत रहेगा तो विजयकी दिशा में अग्रसर होना कठिन होगा। उन्होंने द्रोणको परास्त करने की शीघ्र युक्ति बतायी। यदि उनके पुत्र अश्वत्थामाकी मृत्यु का सम्वाद उनसे कहा जाय तो यह निश्चय है कि, पुत्र-शोक से विह्वल होकर वे अस्त्रका परित्याग कर देंगे। श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर से कहा—

मध्यर्धं दिवसं द्रोणो युद्धयते मन्युमास्थितः ।
सत्यं ब्रवीदि ते सेना विनाशं समुपैष्यति ।।

यदि द्रोणाचार्य आधे दिन भी लड़ते रहे तो निश्चय ही हे युधिष्ठिर, तेरी सारी सेना नष्ट हो जायगी। इसलिये झूठ ही सही, पर द्रोणको अश्वत्थामाकी मृत्यु का सम्वाद दिया जाय। श्रीकृष्ण की बताई हुई इस युक्तिसे द्रोणाचार्य का वध किया गया। कर्ण का वध करने में भी श्रीकृष्ण ने अर्जुनको राजनीतिका आश्रय लेने की सीख दी । लड़ते हुये कर्ण के रथका पहिया कीचड़ में फँस गया । कर्ण ने रथ से उतरकर पहियेको निकालने का यत्न किया। वे अस्त्र हीन हो गये थे, उन पर प्रहार नहीं करना चाहिए था, पर इस स्थल पर इस सिद्धांत को अपनाना युक्ति संगत समझा गया, जिसके अनुसार अन्यायी और धर्म-विरोधी व्यक्ति पर दया करना अधर्म-प्रवृतिको उत्तेजना देने के समान है। इसलिये—

ततोर्जुनं प्राञ्चलिकं महात्मा,
ततोऽब्रवीद् वासुदेवोपि पार्थम् ।
छिद्यास्य मूर्धानमरेः शरेण,
न यावदारोहति वै रथं वृषः ।।

जब तक कर्ण रथ पर नहीं चढ़ता, उससे पूर्व ही उसका सिर काट कर गिरा दो।

अर्जुनको श्रीकृष्ण ने यह संकेत दिया और कर्ण मारा गया। रण क्षेत्रमें पल-पल विजय की दिशामें निर्विघ्न रूप में बढ़ते जानेकी युक्ति भगवान् श्रीकृष्ण बताते गये और संग्राम के अन्त तक पांडव-दलके कल्याणकी ओर उनका ध्यान केन्द्रित रहा।

रण-क्षेत्र से लौटकर छावनी के पास आने पर श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा कि, तुम पहले रथ से उतरो, तब मैं उतरूंगा। अर्जुन पहले उतरे और उसके बाद भगवान्। भगवान्के उतरते ही सारा रथ जलकर क्षार हो गया। अर्जुन ने इसका कारण पूछा। भगवान् बोले—

अस्त्रैर्बहुविधैर्दग्धः पूर्वमेवाय अर्जुन।
मदधिष्ठितत्वात् समरेन विशीर्णः परन्तपः॥
इदानिन्तु विशीर्णोऽयं दग्धो ब्रह्मास्त्रतेजसा।
मया विमुक्तः कौन्तेय त्वय्यद्य कृत कर्मणि॥

हे अर्जुन विविध शस्त्रास्त्रों से यह रथ पहले ही जल चुका था, पर मैं इसे रोके हुए था। अब तेरा कार्य सफल हो गया, इसलिये मैंने इसे त्याग दिया और यह भस्म होगया। यदि तू आज पहले न उतरता तो तू जल जाता।

इन उदाहरणों के आलोक में इसी निष्कर्ष पर पहुँचा जाता है कि यदि श्रीकृष्ण पांडव-दल में न होते तो पाँडवों की विजय नहीं होती। द्रोणाचार्य का यह वाक्य 'यतो कृष्णः स्ततो जयः' अक्षरशः सत्य प्रमाणित हुआ था।



सुमिरो गोपाल लाल

सुमिरो नटनागर-वर सुन्दर गोपाल लाल।
सब दुख मिट जैहैं वे चितत लोचन विसाल॥
अलकनकी झलकन लखि पलकन गति भूलि जात।
भ्रू-विलास, मन्द हास, रदन-छदन अति रसाल॥
निन्दत रवि-कुण्डल-छवि गण्ड-मुकुर झलमलात।
पिच्छ-गुच्छ कृत वतंस, इन्दु विमल बिन्दु भाल॥
अङ्ग-अङ्ग जित अनङ्ग माधुरी तरङ्ग-रङ्ग।
विमद मद गयन्द होत देखत लटकीली चाल॥
हसन लसन, पीत वसन, चारु हार वर-सिंगार।
तुलसी रचित,कुसुम-खचित पीन उर नवीन माल॥
व्रज नरेस बंस-दीप, वृन्दावन-वर-महीप।
वृषभानु-मानपात्र सहज दीनजन-दयाल॥
रसिक-भूप, रूप-रास, गुन-निधान, जानराय।
गदाधर-प्रभु, युवतीजन-मुनिजन-मानस-मराल॥

"भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं अमृततत्व हैं । उनकी उपासना अमृतत्व की ही उपासना है । 'गीता' उनकी उपासनाकी निसेनी है । जो लोग गीताकेश्लोकों को जीवन-अंचल से बाँधकर अपना पग उठाते हैं, वे ही श्रीकृष्ण रूपी अमृतत्वको समझ पाते है, अन्यथा पंक में ही फँस कर रह जाते है ।"

मोक्षमार्ग के उपदेष्टा—भगवान् श्रीकृष्ण

डा०श्रीजयकिशनप्रसाद खण्डेलवाल

भारतीय जीवनमें भगवान् राम और कृष्णका महत्व सर्व विदित है । यदि यह कहें कि, भारतीय जीवन ही राममय और कृष्णमय है, तो अत्युक्ति न होगी । भगवान् राम और कृष्ण, दोनोंके अवतार भारतीय जीवनके ज्ञान और भक्तिके स्रोत रहे हैं । यदि राम ज्ञानमयी चिन्मय भक्तिके प्रेरक हैं, तो श्रीकृष्ण भक्तिमय चिन्मय ज्ञानके प्रकाशक हैं । जिस प्रकार सूर्य और चन्द्र सृष्टिको जीवन प्रदान करनेवाले हैं, उसी प्रकार सूर्यवंशी मर्यादा पुरुषोत्तम राम शक्ति, शील एवं सौंदर्यके अवतार हैं और सूर्यकी भाँति ही उनका तेजोमय शील हमारे भारतीय जीवनको प्रकाशित कर रहा है और करता रहेगा । भगवान् भुवन भास्कर तो सृष्टिके कण-कण में प्राणोंका, नवजीवनका संचार करनेवाले, प्रकाशित करनेवाले हैं । आत्मा को भी सूर्यकीभाँति माना गया है तेजोमय, ज्ञानमय । सूर्यकीकिरणें कण-कणको प्रकाशित कर देती हैं, जीवन प्रदान करती हैं । सूर्यवंश मुकुटमणि भगवान् रामभी भारतीयोंकेलिए सूर्यके समान जीवन प्रदान करनेवाले हैं ।

भगवान् श्रीकृष्ण तमोमयी, मूर्च्छामयी रात्रिमें चन्द्रकी शीतल एवं अमृतोपम किरणावलीके समान भारतीय जीवन में अमृत वर्षा करते रहे हैं, करते रहेंगे । उनका पावन चरित्र माधुर्य पूर्ण है, जिससे अमृत एवं शीतलताकी उपलब्धि होती है । भगवान् श्रीकृष्णका सन्देश, अमृतमयी वाणी श्रीमद्भगवद्गीतामें सन्निहित है । गोपी प्रेम और गीता का ज्ञान, कर्म और भक्तियोग, दोनों ही एक ही स्तर पर हैं, एक ही तत्व हैं । गोपी प्रेम का आदर्श है—

ता मन्मस्का मत्प्राणा मदर्थे त्यक्तदेहिकाः ।

भगवान्कृष्ण कहते हैं कि, गोपियाँ मेरे मनवाली हैं, मेरे प्राणों वाली है, मेरे लिये अपने शरीर के सारे सम्बन्ध त्याग चुकी हैं । भक्तका यही स्वरूप है । गीता में १८

अध्याय तक ज्ञानयोग, कर्मयोग और भक्तियोगकी चर्चा करने के पश्चात् भगवान् श्रीकृष्ण भक्तवर अर्जुन से कहते हैं—

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।

'एक मेरी शरणमें आनेपर तेरे सारे पापोंकी निर्जरा हो जायगी ।'

सारांश यह कि, भगवान् श्रीकृष्णकी शीतल शरणमें जाकर अमृतोपलब्धि अवश्यं-भावी है । वे तो अमृतके भंडार हैं । श्रीगीता और भगवान् कृष्ण-दोनों ही एक ही तत्व हैं और वह है अमृत-तत्व । इस प्रकार भगवान् कृष्ण भारतीय जीवनमें अमृततत्वके प्रतीक हैं । उनकी भक्ति सुधारस से सिक्त करनेवाली है । उनकी वाणी सुधामयी है—चाहे सांसारिक जीवनकेलिए श्रीगीताका अनुसरण करो, तो अनासक्त कर्मयोगसे अमृतत्व की उपलब्धि हो जायगी और चाहे गोपी प्रेम-रूप 'ता मन्मनस्कामत्प्राणा' बन जाओ, तब भी अमृतत्वकी प्राप्ति निश्चित है ।

कहने का तात्पर्य यह कि, चन्द्रवंशके चन्द्र श्रीभगवान् कृष्णचन्द्रका जीवन चरित्र और उनकी उपासना अमृतत्व की ही उपासना है, जिसने इस तत्व को जान लिया, वह अमर हो गया । भारतीय जीवनकी श्रेष्ठताके आधारस्तम्भ भगवान् राम और श्रीकृष्णके चरित्रहैं । यह भारतभूमिका ही पुण्य प्रताप है, जहाँ भगवान् मानव देह धारण करके भक्तजनोंके कल्याणार्थ सगुण अवतार धारण करते हैं । इसीलिए तो देवता भी इस पुण्यभूमि में जन्मलेनेकेलिए लालायित रहते हैं । वे भी इस पुण्यभूमिका गौरव गान करते हैं । यह भगवान् राम और कृष्णकी लीलाभूमि है ।

आज भारतीयलोग पाश्चात्य तड़क-भड़क एवं चकाचौंधसे प्रभावित होकर विदेशोंकी ओर दौड़ लगा रहे हैं और स्वधर्म एवं संस्कृतिका परित्यागकर परधर्म और संस्कृतिको अपनाकर भयावह बन रहे हैं । यह कलिकाल का ही प्रभाव है । भगवान् कृष्णकी अमृत वाणी इस कलिकालमें भी उद्घोषित हो रही है—भगवान् श्रीकृष्ण ने जो कुरुक्षेत्र में उद्घोष किया, वही आज के भारतीयोंको जीवित रखने में समर्थ है—'स्वधर्मे निधनं श्रेयः' अन्यथा परधर्म को अपनाकर भयावह स्थिति हो जायगी । आजके पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित भारतीयोंकेलिए गीता ही जीवनदायिनी, धर्मरक्षक सिद्ध हो सकती है । जिस प्रकार कुरुक्षेत्रमें गीता की महती आवश्यकताका अनुभव करके भगवान् श्रीकृष्ण ने युद्ध-भूमिमें उसका प्रणयन किया, उसी प्रकार आजके भारतीय और विजातीय संस्कृतिके महान् संघर्षमें श्रीगीताके द्वारा ही उद्धार संभव है, वरना भारतीय धर्म जर्जर हो जायगा । इस समय दैवी-दानवी वृत्तियों का द्वन्द्व बहुत प्रखर हो उठा है, भौतिक उन्नतिके साथ ही व्यसन एवं प्रमादका भी बोलबाला हो रहा हैं । क्योंकि—

"सुखमें व्यसन प्रमाद भरे
दुःख में पुरुषार्थ झलकता है ।"

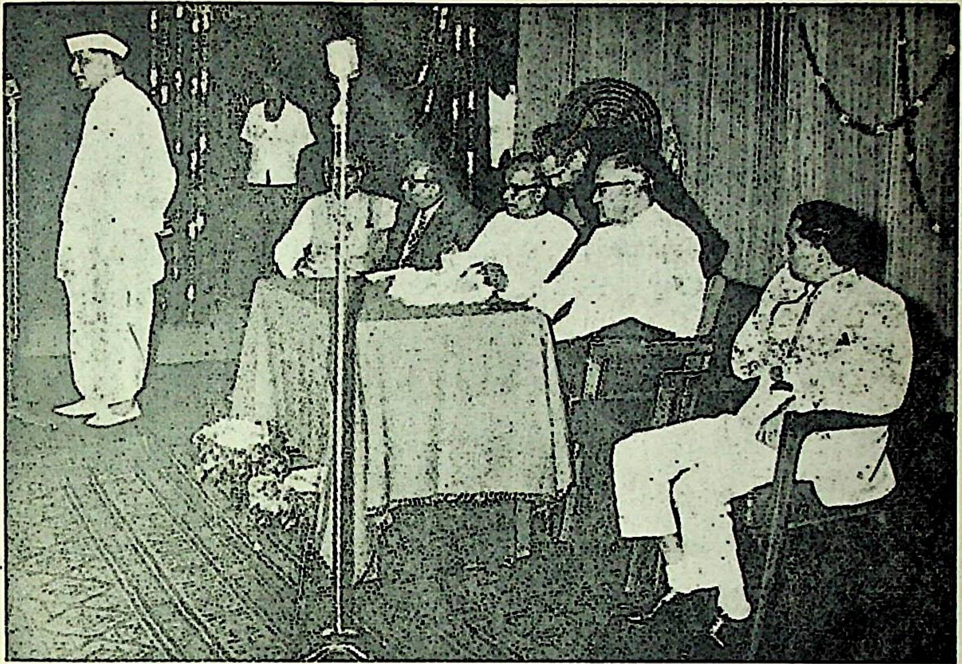
श्रीगीता पुरुषार्थकी सन्देशवाहिनी है । उठो, जाग्रत हो, क्लैब्य मत बनो, पुरुषार्थ करो, मन को ढीला मत छोड़ो, अभ्यासके द्वारा इस मनपर शासन करो । यही सबसे बड़ा पुरुषार्थ है । अनासक्त भाव से पुरुषार्थ करो, फलेच्छा तो पुरुषार्थको भी दूषित बना डालती है । साध्य ही नहीं, साधन की भी शुद्धि हो, चाहे निधन हो जाय, वह भी श्रेयस्कर है, किन्तु धर्म एवं संस्कृतिको नहीं छोड़ना—आस्थाका परित्याग नहीं करना—निष्ठा बनाए रखना और विश्वास रखो उन श्रीकृष्णचन्द्रकी अमृतमयी कृपा पर। वे तो मनमोहन हैं,उनके चरणों में तो यह उदण्ड मन भी मोहित होकर एकाग्र हो जायगा । वे तो सभी प्रकार से तुम्हारा कल्याण करनेवाले हैं । सभी पापों से मुक्त करनेवाले, कर्मबन्ध से छुड़ाने वाले । कर्मों की निर्जराकेलिए तो भगवान् श्रीकृष्णने फलासक्तिके त्याग की बात कही, अनासक्त कर्मयोग की चर्चा की । कर्मोंकी निर्जरा होने के पश्चात्—क्षायिक भाव होने के पश्चात्, पारणामिक भाव तो अगला सोपान ही है । अनासक्तिही क्षायिक भाव की जननी है। इस प्रकार भगवान् कृष्णने क्रमशः अर्जुन को मोक्षमार्ग का प्रकाश दिया । ज्ञानयोग, कर्मयोग और भक्तियोग ही जैन दर्शन में 'सम्यक् ज्ञान, दर्शन, चारित्राणि मोक्षमार्गं'' कहा है । भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनको गीतामें मोक्षमार्ग का दर्शन कराया है । सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन, सम्यक् चारित्र्य—इन्हीं की व्याख्या गीता में ज्ञानयोग, भक्तियोग और कर्मयोगके रूप में की गई है । ज्ञान, दर्शन और चारित्र्य यदि सम्यक् हो जाएँ तो मोक्ष का द्वार खुला हुआ है । भगवान् श्रीकृष्ण ने श्रीगीताके द्वारा मानवको मोक्षमार्ग का उपदेश दिया । श्रीगीता भारतीय जीवनमें चन्द्रकी भाँति शीतलता एवं अमृतत्व का संचार करती रही है और सदैव करती रहेगी ।

एस धर्मः सनातन

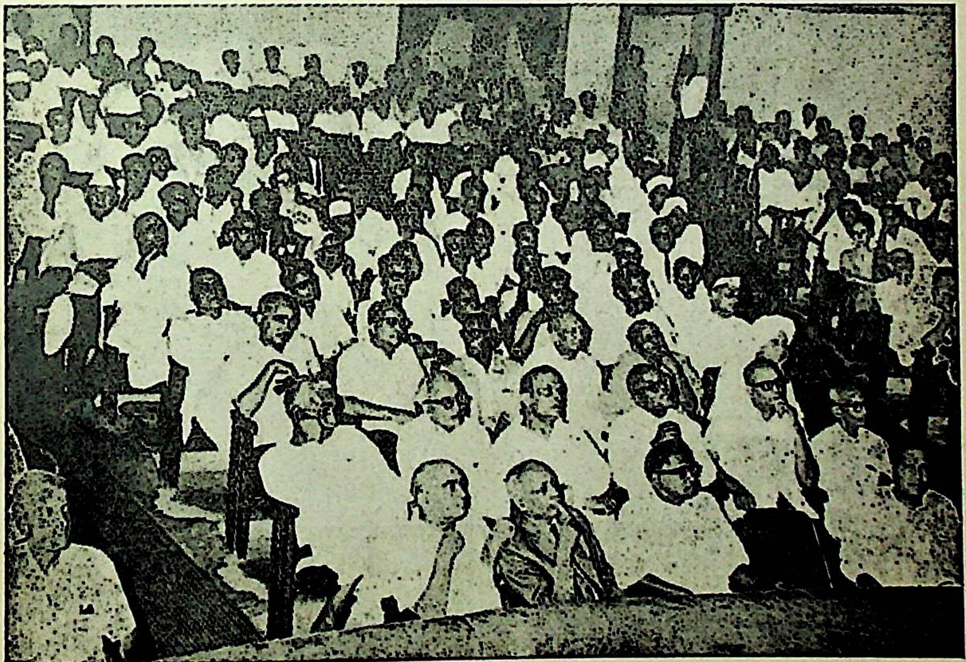
वेद स्मृति, सदाचार और अर्थ (उपकार) इन चारों से धर्म का ज्ञान होता है । मनुष्य आरंभ किये हुये धर्मका, निर्णय करके, पालन करते है । लोक-व्यवहारकेलिए धर्मकी मर्यादा स्थापित हुई । धर्म करने से इस लोक में और परलोक में सुख मिलता है । जो मनुष्य धर्मकी परवा नहीं करता, उसे निस्सन्देह पाप भोगना पड़ता है । पापी को पाप से भी छुटकारा नहीं मिलता, किन्तु कोई-कोई मनुष्य विपत्ति के समय पाप करने पर निष्पाप और झूठ बोलने पर भी सत्यवादी तथा धार्मिक कहलाता है । सदाचार धर्म का आश्रय है, उसी सदाचारका अवलम्बन करने से धर्मका ज्ञान होता है ।

अराजक राज्य में चोरी करके चोर बेधड़क अपने को धर्मात्मा बतलाता है, किन्तु जब उसकाभी दूसरा चुरा लेता है, तब वह राजा के पास जाकर उस चोर का नाम बतला देता है । उस समय भी उसे अपने मनमें सन्तुष्ट मनुष्योंका धन चुरानेका लोभ रहता है । जिसका स्वभाव शुद्ध और जो अपने को सर्वथा निर्दोष समझता है, वह निडर होकर राजद्वार पर जा सकता है । मनुष्योंको हमेशा सत्य बोलना चाहिए । सत्य से बढ़कर कुछ नहीं है । सत्य में सब कुछ प्रतिष्ठित है । पापी और उग्र स्वभाव वाले मनुष्य भी सत्य के प्रभाव से निडर बनकर, एक दूसरे की बुराई न करके, परस्पर एकता स्थापित कर सकते हैं । वे यदि मर्यादा को तोड़दें तो निस्सन्देह परस्पर नष्ट हो जावें । दूसरों का धन न चुराना चाहिए, यह सनातन धर्म है ।

श्रद्धाञ्जलि - समर्पणकी झलकियाँ—



केन्द्रीय मन्त्री श्रीसत्यनारायण सिन्हा स्वर्गीय श्रीजुगलकिशोरजी बिरलाको खड़े हुए अपनी श्रद्धाञ्जलि सर्मपित कर रहे हैं।



समारोहमें उपस्थित जन-समूहकी एक झाँकी। इस समारोहका आयोजन आल इण्डिया फाइन आर्ट्स एण्ड क्राफ्ट सोसाइटीके नयी दिल्ली स्थित भवनके थियेटर हालमें किया था।

आवरण मुद्रक : राधाप्रेस, गांधीनगर दिल्ली-३१